परिशिष्ट

विचार सागर मूल

प्रथम तरङ्ग

जो सुख नित्य प्रकाश, विभु नाम रूप आधार।
मति न लखै जिहिं मति लखै, सौ मैं शुद्ध अपार॥ १॥
अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश।
विधि रवि चन्दा वरुण यम शक्ति धनेश गणेश॥ २॥
जा कृपालु सर्वज्ञ को, हिय धारत मुनि ध्यान।
ताको होत उपाधि तैं, मो मैं मिथ्या भान॥ ३॥
ह्वै जिहिं जाने बिन जगत्, मनहु जेवरी सांप।
नशै भुजंग जग जिहिं लहै, सोऽहं आपे आप॥ ४॥
बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम।
सो मेरी है आतमा, काकूं करूं प्रणाम॥ ५॥
भर्यो वेद सिद्धान्त जल, जामैं अति गम्भीर।
अस विचार सागर कहूं, पेखि मुदित ह्वै धीर॥ ६॥
सूत्र भाष्य वार्तिक प्रभृति, ग्रन्थ बहुत सुरवानि।
तथापि मैं भाषा करूं, लखि मतिमन्द अजानि॥ ७॥
कविजन कृत भाषा बहुत, ग्रन्थ जगत् विख्यात।
बिन विचार सागर लखे, नहिं सन्देह नशात॥ ८॥

नहिं अनुबन्ध पिछानै जौ लौं, न ह्वै प्रवृत्त सुघर नर तौ लौं।
जानि जिनै यह सुनै प्रबन्धा, कहूं ब यातैं ते अनुबन्धा॥ ९॥
अधिकारी, सम्बन्ध, विषय, प्रयोजन मेलि चव।
कहत सुकवि अनुबन्ध, तिनमैं अधिकारी सुनहु॥ १०॥
मल विद्देप जाके नहीं, किन्तु एक अज्ञान।
ह्वै चव साधन सहित नर, सो अधिकृत मतिमान॥ ११॥
प्रथम विवेक विराग पुनि, शमादि षट् सम्पत्ति।
कही चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चव साधन सत्ति॥ १२॥
अविनाशी आतम अचल, जग तातै प्रतिकूल।
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधन को मूल॥ १३॥
ब्रह्मलोक लौं भोग जो, चहै सबन को त्याग।
वेद अर्थ ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग॥ १४॥
शम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम।
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्न भिन्न यह नाम॥ १५॥
मन विषयन तैं रोकनों, शम तिहिं कहत सुधीर ।
इन्द्रिय गण को रोकनों, दम भाषत बुधवीर॥ १६॥
सत्य वेद गुरू वाक्य हैं, श्रद्धा अस विश्वास।
समाधान ताकूं कहत, मन विक्षेप को नाश॥ १७॥
साधन सहित कर्म सब त्यागै, लखि विष सम विषयनतैं भागै।
दृग नारी लखि ह्वै जिय ग्लाना, यह लक्षण उपराम बखाना॥ १८॥
आतप शीत क्षुधा तृषा, इनको सहन स्वभाव।
ताहि तितिक्षा कहत हैं, कोविद मुनिवर राव॥ १९॥
शमादि षट् सम्पत्ति को, भाषत साधन एक।
इम नव नहिं साधन भनै, किन्तु चारि सविवेक॥ २०॥
ब्रह्मप्राप्ति अरु बन्धकी, हानि मोक्ष को रूप।
ताकी चाह मुमुक्षता, भाषत मुनिवर भूप॥ २१॥

ये चव साधन ज्ञानके, श्रवणादिक त्रय मेलि।
तत्पद, त्वंपद अर्थको, शोधन अष्टम भेलि॥ २२॥
अन्तरङ्ग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरङ्ग।
अन्तरङ्ग धारै तजै, बहिरङ्ग को सङ्ग॥ २३॥
प्रतिपादक प्रतिपाद्यता, ग्रन्थ ब्रह्म सम्बन्ध।
प्राप्य प्रापकता कहत, फल अधिकृत को फँद॥ २४॥
जीव ब्रह्म की एकता, कहत विषय जन बुद्धि।
तिनको जो अन्तर लहैं, ते मतिमन्द अबुद्धि॥ २५॥
परमानन्द स्वरूप की, प्राप्ति प्रयोजन जानि।
जगत् समूल अनर्थ पुनि, ह्वै ताकी अति हानि॥ २६॥
जीव को स्वरूप अति आनन्द कहत वेद,
ताकूं सुख प्राप्ति को असम्भव बखानिये।
आगे जो अप्राप्त वस्तु ताकी प्राप्त सम्भवत,
नित्य प्राप्त वस्तु की तौ प्राप्ति किमि मानिये॥
ऐसी शङ्का लेश आनि कीजै न विश्वास हानि,
गुरूके प्रसाद तैं कुतर्क भले भानिये॥
कर को कंनक खोयो ऐसो भ्रम भयो जिहिं।
ज्ञान तैं मिलत इमि प्राप्त प्राप्ति जानिये॥ २७॥
अधिष्ठान तैं भिन्न नहि, जगत निवृत्ति बखान।
सर्प निवृत्ति रज्जु जिम, भए रज्जु को ज्ञान॥ २८॥
जो जन प्रथम तरङ्ग यह, पढ़ै ताहि तत्काल।
करहु मुक्त गुरू मुर्ति ह्वै, दादू दीन दयाल॥ २९॥

द्वितीय तरङ्ग

याके प्रथम तरङ्ग मैं किया अनुबन्ध विचार।
कहूं ब द्वितीय तरङ्ग मैं, तिन को ही विस्तार॥ १॥

मूल सहित जगध्वंस की, कोऊ करत नहीं आश।
किन्तु विवेकी चहत है, त्रिविध दुख को नाश॥ २॥
किय अनुभव जा वस्तु को, ताकि इच्छा होई।
ब्रह्म नहीं अनुभूत इम, चहै न ताकूं कोई॥ ३॥
चहत विषय सुख सकल जन, नहीं मोक्ष को पन्थ।
अधिकारी या तैं नहीं, पढ़ै सुनै जो ग्रन्थ॥ ४॥
जीव ब्रह्म की एकता, कह्यो विषय सो कूर।
क्लेश रहित विभु ब्रह्म इक, जीव क्लेश को मूर॥ ५॥
बन्ध निवृत्ति ज्ञान तैं, बनै न बिन अध्यास।
सामग्री ताकी नहीं, तजो ज्ञान की आस॥ ६॥
सत्य वस्तु के ज्ञान तैं, संस्कार इक जान।
त्रिविध दोष अज्ञान पुनि, सामग्री पहिचान॥ ७॥
सत्य बन्ध की ज्ञान तै, नहीं निवृत्ति सयुक्त।
नित्य कर्म सन्तत करै, भयो चहै जो मुक्त॥ ८॥
मूल सहित जग हानि बिन, ह्वै न त्रिविध दुःख ध्वंस।
याते जन चाहत सकल, प्रथम मोक्ष को अंस॥ ९॥
किय अनुभव सुख को सबहि, ब्रह्म सुन्यो सुख रूप।
ब्रह्म प्राप्ति या हेतु तैं, चहत विवेकी भूप॥ १०॥
केवल सुख सब जन चहैं, नहीं विषय की चाह।
अधिकारी यातैं बनै, ह्वै जु विवेकी नाह॥ ११॥
साक्षी ब्रह्म स्वरूप इक, नहीं भेद को गन्ध।
राग द्वेष मति के धरम, तामें मानत अन्ध॥ १२॥
सजातीय ज्ञान संस्कार तैं अध्यास होत,
सत्य ज्ञान जन्य संस्कार को न नेम है।
दोष को न हेतुता अध्यास विषे देखियत,
पट विषे हेतु जैसे तुरी तन्तु वेम हैं॥

आतमा द्विजाति, संख पीत, सिता कटुभासै,
सीप मैं विरागी रूप देखै बिन प्रेम है।
नभ नील रूपवान् भासत कटाह तम्बू,
जिनके न कोउ पित्त प्रभृति अक्षेम हैं॥ १३॥
चित् सामान्य प्रकाश तैं, नहीं नशे अज्ञान।
लहै प्रकाश सुषुप्ति में, चेतन तै अज्ञान॥ १४॥
दादू दीन दयाल जू, सत सुख परम प्रकास।
जामैं मति की गति नहीं, सोई निश्चलदास॥ १५॥

तृतीय तरङ्ग

पेखि च्यारि अनुबन्ध युत, पढै सुनै यह ग्रन्थ।
ज्ञान सहित गुरू सैं जु नर, लहै मोक्ष को पन्थ॥ १॥
अनायास मति भूमि मैं, ज्ञान चिमन आवाद।
ह्वै इँहि कारन कहत हूँ, गुरू शिष्य संवाद॥ २॥
वेद अर्थ कूं भलै पिछानैं,आतम ब्रह्म रूप इक जानैं।
भेद पंच की बुद्धि नशावै, अद्वय अमल ब्रह्म दरशावै॥ ३॥
भव मिथ्या मृगतृषा समाना, अनुलव इम भाखत नहि आना।
सो गुरू दे अद्भुत उपदेशा, छेदक शिखा न लुञ्चित केशा॥ ४॥
करत मोक्ष भव ग्राहते, दे असि निज उपदेश।
सो दैशिक बुध जन कहत, नहिं कृत गैरिक वेष॥ ५॥
दैसिक के लक्षण कहे, श्रुति मुनि वच अनुसार।
सो लक्षण हैं शिष्य के, ह्वै जिन तैं अधिकार॥ ६॥
ईश्वर तैं गुरू मैं अधिक, धारे भक्ति सुजान।
बिन गुरू भक्ति प्रवीण हूँ, लहै न आतम ज्ञान॥ ७॥
वेद उदधि बिन गुरू लखै, लागै लौ न समान।
बादर गुरूसुख द्वार ह्वै, अमृत से अधिकान॥ ८॥

तिपुट घट सम अज्ञ जन, मेघ समान सुजान।
पढै वेद इहिं हेतु तै, ज्ञानी पै तजि आन॥ ९॥
ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्, ताकी बानी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद॥ १०॥
बानी जाकी वेद सम, कीजै ताको सेव।
ह्वै प्रसन्न जब सेव तैं, तब जानै निज भेव॥ ११॥
ह्वै जब ही गुरू संग, करै दण्ड जिमि दंडवत्।
धारै उत्तम अंग, पावन पाद सरोज रज॥ १२॥
गुरू समीप पुनि करिये वासा, जो अति उत्कट ह्वै जिज्ञासा।
तन मन धन वच अर्पी देवै, जो चाहै हिय बन्धन छेवै॥ १३॥
तन करि बहु सेवा बिस्तारै, आज्ञा गुरू की कबंहु नहिं टारै।
मन मैं प्रेम राम सम राखै, ह्वै प्रसन्न गुरू इभ अभिलाखै॥ १४॥
दोष दृष्टि स्वपनै नहिं, आनै, हरि हर ब्रह्म गंग रवि जानै।
गुरू मूर्ति को हिय मैं ध्याना, धारै जो चाहै कल्याना॥ १५॥
पत्नि, पुत्र, भूमि, पशु, दासी, दास, द्रव्य ग्रह ब्रीही विनाशी।
धन पद इन सबहिन कूं भाखै, ह्वै गुरू शरण दूरि तिहिं नाखै॥ १६॥
धन अर्पता को भेव, एक कह्यो सुन दूसरो।
ह्वै गृहस्थ गुरूदेव, याज्ञवल्क्य सम देह तिहिं॥ १७॥
भाषत गुण गण गुरू के वाणी शुद्ध।
दोष न कबहुं अर्पन करि इम बुद्धि॥ १८॥
जो चाहै कल्याण, तन, मन, धन, वच, अरपि इम।
बसै बहुत गुरू स्थान, भिच्छा तैं जीवन करे॥ १९॥
जो भिक्षा धरि दैनिक आगै, निज भोजन कूं नहिं पुनि मांगै।
जो गुरू देइ तु जाठर डारै, नहिं दूजे दिन वृत्ति संभारै॥ २०॥
पुनि गुरू के आगे धरै, भिक्षा शिष्य सुजान।
निर्वेद न जिय में करै, जो निज चहै कल्यान॥ २१॥

इमि व्यवहृत अवसर जब पेरवै, मुख प्रसन्न गुरू सन्मुख लेखै।
बिनती करै दोऊ कर जोरी, गुरू आज्ञा तैं प्रश्न बहोरी॥ २२॥
तन मन धन वाणी अरपि, जिहिं सेवत चित लाय।
सकल रूप सो आप हैं, दादू सदा सहाय॥ २३॥

चतुर्थ तरङ्ग

गुरू शिषके सम्वाद की, कहूं ब गाथ नवीन।
पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचार प्रवीन॥ १॥
तीन सहोदर बाल शुभ, चक्रवर्ति सन्तान।
शुभ सन्तति पितु तिहिं नमैं, स्वर्ग पताल जहान॥ २॥
तत्त्व दृष्टि इक नाम अहि, दूजो कहत अदृष्ट।
तर्क दृष्टि पुनि तीसरो, उत्तम, मध्य, कनिष्ठ॥ ३॥
बालपनो सब खेलत खोयो, तरुण पाय पुनि मदन बिगोयो।
धारि नारि गृह मार प्रकाशी, भोग लहै तिहुं सब सुख राशी॥ ४॥
स्वर्ग भूमि पातालके, भोगहिं सर्व समाज।
शुभ सन्तति निज तेज बल, करत राज के काज॥ ५॥
लहि अवसर इम तिहिं पिता, निज हिय रच्यो विचार।
सुख स्वरूप अज आतमा, तासूं भिन्न असार॥ ६॥
इहिं कारन तजि राज यह, जानूं आतम रूप।
स्वर्ण भूमि पातालके, तिहुं पुत्रहुँ करि भूप॥ ७॥
अस विचार सन्तति कीना, मंत्री पेखि तिहुं पुत्र प्रवीना।
देश इकन्त समीप बुलाये, निज विराग के वचन सुनाये॥ ८॥
भाख्यो पुनि यह राज संभारहु, इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु।
अपर वसतु काशी भुवि स्वामी, रहत जहां शिव अन्तरयामी॥ ९॥
जिहिं मरतहि सुनि शिव उपदेशा, अनायास तिहिं लोक प्रवेशा।
गङ्ग अङ्ग मनु कीर्ति प्रकासै, उत्तर वाहिनि अधिक उजासै॥ १०॥

करहु राज इम भिन्न तिहुं, पालहु निज निज देश।
बिन विभाग भ्रातान को, भूमिकाज ह्वै क्लेश॥ ११॥
राज समाज तजौ अब मैं सब, जानि हिये दुख ताहि असारा।
और तु लोक दुखी अपने दुःख, मैं भुगत्यो जग क्लेश अपारा॥
जे भगवान् प्रधान अजान, समान दरिद्रन ते जन सारा।
हेतु विचार हिये जगके भग, त्यागि लखूं निजरूप सुखारा॥ १२॥
वाक्य अनन्त कहे इम तात, सुने तिहुँ भ्रात सुबुद्धि निधाना।
बैठि इकन्त विचार अपार, भनै पुनि आपस मांहि सुजाना॥
दे दुःखमूल समाज हमैं यह, आप भयो चह ब्रह्म समाना।
सो जन नागर बुद्धि के सागर, आगर दुःख तजै जु जहाना॥ १३॥
यातैं तजि दुःखमूल यह, राज करौ निज काज।
करि विचार इह गेह तैं, निकस्यो भ्रात समाज॥ १४॥
तिहुँ खोजत सतगुरू चले, धारि मोक्ष हिय काम।
अर्थसहित किय तात को, शुभसन्तति यह नाम॥ १५॥
खोजत खोजत देश बहु, सुरसरि तीर इकन्त।
तरु पल्लव शाखा सघन, बन तामैं इक सन्त॥ १६॥
बैठ्यो बट विटपहिं तरै, भद्रा मुद्रा धारि।
जीव ब्रह्मकी एकता, उपदेशत गुण टारि॥ १७॥
दोषरहित एकाग्रचित्त, शिष्य संघ परिवार।
लखि दैशिक उपदेश हिय, चहुंधा करत विचार॥ १८॥
मनहूं शम्भु कैलास मैं, उपदेशत सनकादि।
पेखि ताहि तिहिं लहि शरण, करि दण्डवत आदि॥ १९॥
कियो वास षट्मास पुनि, शिष्य रीति अनुसार।
करी अधिक गुरूसेव तिहुं, मोक्ष काम हिय धार॥ २०॥
ह्वै प्रसन्न श्रीगुरू तवै, ते पूछे मृदु बानि।
किंहि कारण तुम तात तिहुँ, वसहु कौन कह आनि॥ २१॥

तत्त्व दृष्टि तब लखि हिये, निज अनुजन की सैन।
कहै उभय कर जोरि निज, अभिप्रायके बैन॥ २२॥
भो भगवान हम भ्रात तिहुँ, शुभ सन्तति सन्तान।
लख्यो चहैं बहु भेव हिय, दीन नवीन अजान॥ २३॥
जो आज्ञा ह्वै रावरी, तौ ह्वै पूछि प्रवीन।
आप दयानिधि कल्पतरू, हम अति दुखित अधीन॥ २४॥
सुनहु शिष्य मम बात, जो पूछहु तुम सों कहूँ।
लहो हिय कुशलता, संशय कोऊ ना रहै॥ २५॥
गुरूकी लखि दयालुता, शिष्य हिये भौ चैन।
काज सिद्ध निज मानि हिय, भाषे सविनय बैन॥ २६॥
भो भगवान तुम कृपानिधाना, हो सर्वज्ञ महेश समाना।
हम अजानमति कछू न जानैं, जन्मादिक संसृति भय मानैं॥ २७॥
कर्म उपासन कीने भारी, और अधिक जगपाशी डारी।
आप उपाय कहौ गुरूदेवा, ह्वै जातैं भवदु:ख को छेवा॥ २८॥
पुनि चाहत हम परमानन्दा, ताको कहो उपाय सुछन्दा।
जब किरपा करि कहिहौ ताता, तब ह्वै है हमरे कुशलता॥ २९॥
मोक्ष काम गुरू शिष्य लखि, ताको साधन ज्ञान।
वेद उक्त भाषण लगे, जीव ब्रह्म भिद भान ॥ ३०॥
परमानन्द मिलाप तू, जो शिष चहै सुजान।
जन्मादिक दु:ख नाश पुनि, भ्रान्ति जन्य तिहिं मान॥ ३१॥
परमानन्द स्वरूप तू, नहिं तो मैं दु:खलेश।
अज अविनाशी ब्रह्मचित्, जिन आनै हिय क्लेश॥ ३२॥
विषय संग क्यूं भान ह्वै, जो मैं आनन्द रूप।
अब उत्तर याको कहौ, श्रीगुरू मुनिवर भूप॥ ३३॥
आतम विमुख बुद्धि जन जोई, इच्छा ताहि विषय की होई।
तासूं चंचल बुद्धि बखानी, सुख आभास होइ तहाँ हानि॥ ३४॥

जब अभिलषित पदारथ पावै, तब मति छनक विच्छेप नशावै।
तामैं ह्वै आनन्द प्रतिबिम्बा, पुनि छन मैं बहु चाह विडम्बा॥ ३५॥
तातैं ह्वै थिरता को हानि, सो अनन्द प्रतिबिम्ब नशानी।
विषय सँग इम आनन्द होई, बिन सत्गुरू यह लखै न कोई॥ ३६॥
विषय संगतैं ह्वै प्रगट, आतम आनन्द रूप।
शिष्य सुनायो होहि मैं, यह सिद्धान्त अनूप॥ ३७॥
सो तूं मोहि व भाख, जो यामैं शंका रही।
निज मति मैं मति राख, मैं ताको उत्तर कहूं॥ ३८॥
भो भगवान् तुम दीन दयाला, मेट्यो मम संशय तत्काला।
यामें कछुक रही आशंका, सो भाखूं अब ह्वै निर्बंका॥ ३९॥
आतम विमुख बुद्धि अज्ञानी, ताकी यह सब रीति बखानी।
ज्ञानी जनको कहौ विचारा, कोऊ न तुम सम और उदार॥ ४०॥
सुनहु शिष्य इक बात मम, सावधान मन कान।
हैं द्वैविध आतम विमुख, अज्ञानी रु सुजान॥ ४१॥
ह्वै विस्मृत व्यवहार मैं, कबहुंक ज्ञानी सन्त।
अज्ञानी विमुख ही रहै, यह तू जान सिधंत॥ ४२॥
हे प्रभु परमानन्द बखान्यो, मेरो रूप सु मैं पहचान्यो।
नहि तो मैं भव बंधन लेशा, कह्यो आप पुनि यह उपदेशा॥ ४३॥
यामें शङ्का मुहि यह आवै, जातैं तव वच हिय न सुहावै।
नहिं मो मैं यह बन्ध पसारो, कहो कौन तो आश्रय न्यारो॥ ४४॥
सुनहु शिष्य मम बानि, जातैं तव शंका मिटै।
ह्वै जगकी अति हानि, तो मो मैं नहिं और मैं॥ ४५॥
जो भगवन् कहुँ है नहीं, जन्म मरण जग खेद।
ह्वै प्रत्यक्ष प्रतीति क्यों, कहो आप यह भेद॥ ४६॥
आत्म रूप अज्ञान तैं, ह्वै मिथ्या परतीति।
जगत् स्वप्न नभ नीलता, रज्जु भुजगकी रीति॥ ४७॥

मिथ्या सर्प रज्जू मैं जैसे, भाख्यो भव आतम मैं तैसे।
कैसे सर्प रज्जू मैं भासै, यह संशय मन बुद्धि विनाशै॥ ४८॥
असत ख्याति पुनि आतम ख्याति, ख्याति अन्यथा अरु अख्याति।
सुनै चारि मत भ्रमको ठौरा, मान्नूं कौन? कहौ यह व्यौरा॥ ४९॥
ख्याति अनिर्वचनीय लखि, पश्चम तिन तैं और ।
युक्ति हीन मत चारि ये, मानहु भ्रमकी ठौर॥ ५०॥
यह मिथ्या परतीत ह्वै, जामैं जगत् अपार।
सो भगवन् मोकूं कहौ, को याको आधार॥ ५१॥
तव निज रूप अज्ञान तैं, है मिथ्या जग भान।
अधिष्ठान आधार तूं, रज्जू भुजङ्ग समान॥ ५२॥
भगवन्! मिथ्या जगत् को, द्रष्टा कहिए कौन?।
अधिष्ठान आधार जो, द्रष्टा होए न तौन॥ ५३॥
मिथ्या वस्तु जगत् मैं जे हैं, अधिष्ठानमें कल्पित ते हैं।
अधिष्ठान सो द्विविध पिछानहु, इक चेतन दूजो जड जानहु॥ ५४॥
अधिष्ठान जड वस्तु जहाँ है, द्रष्टा तातें भिन्न तहाँ है।
जहाँ होय चेतन आधारा, तहाँ न द्रष्टा होवै न्यारा॥ ५५॥
चेतन मिथ्या स्वप्नको, अधिष्ठान निर्धार।
सोई द्रष्टा भिन्न नहिं, तैसे जगत् विचार॥ ५६॥
इम मिथ्या संसार दुःख, ह्वै तो मैं भ्रम भान।
ताकी कहा निवृत्ति तू, चाहै शिष्य सुजान॥ ५७॥
जग यद्यपि मिथ्या गुरूदेवा, तथापि मैं चाहूँ तिहि छेवा।
स्वप्न भयानक जाकूं भासै, करि साधन जन जिम तिहि नासै॥ ५८॥
यातैं ह्वै जातैं जग हाना, सो उपाय भाषो भगवाना।
तुम समान सतगुरु नहिं आना, श्रवण फूंकदे वंचक नाना॥ ५९॥
सो मैं कह्यो बखानि, जो साधन तैं पूछियो।
निज हिय निश्चय आनि, रहै न रंचक खेद जग॥ ६०॥

निज आतम अज्ञान ते, ह्वै प्रतीत जग खेद।
नशै सु ताके बोध तैं, यह भाषत मुनि वेद॥ ६१॥
जग मो मैं नहिं "ब्रह्म" में "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
सो तोकूं शिष मैं कह्यो, नहिं उपाय को आन॥ ६२॥
कर्म उपासन तैं नहीं, जग निदान तम नाश।
अन्धकार जिमि गेहमैं, नशै न बिन परकाश॥ ६३॥
भाष्यो शिष उपदेश मैं, जग भंजक हिय धारि।
जो यामैं संशय रह्यो, सो तू पूछ विचारि॥ ६४॥
भो भगवन् जो कुछ तुम भाख्यो, सो सब सत्य जानि हिय राख्यो।
जग निदान अज्ञान बखान्यो, ताको भंजक ज्ञान पिछान्यो॥ ६५॥
ज्ञानरूप वर्णन पुनि कीना, जग मिथ्या सो मैं भल चीना।
सुख स्वरूप आतम परकाश्यो, दया तिहारी सों मोहिं भास्यो॥ ६६॥
पुनि भाख्यो "तू ब्रह्मस्वरूपं" यह मैं लख्यो न भेद अनूपम्।
यामैं मोहि शंका इक आवै, जीव ब्रह्मको भेद जनावै॥ ६७॥
पुण्य पापका हूं मैं कर्ता, जन्म मरण औ सुख दुःख धर्ता।
और अनेक भांति जग भासै, चहुं ज्ञान अज्ञान जु नासै॥ ६८॥
जो यातैं विपरीत स्वरूपा, ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा।
कहो एकता कैसे जानूं, रूप विरुद्ध हिये पहिचानूं॥ ६९॥
सुनहु गुरू दूजो पुनि संशै, जीव ब्रह्म एकत्व प्रनंशै।
एक वृक्ष मैं सम द्वै पंच्छी, फल भोगै इक, दूजो स्वच्छी॥ ७०॥
भोग रहित परकाश असंगा, वेद वचन यह कहत प्रसंगा।
कर्म उपासन पुनि बहु भाखै, जीव ब्रह्म यातै द्वय राखै॥ ७१॥
सुनहु शिष्य इक कहूं विचारा, ह्वै जातैं शंका निस्तारा।
घटाकाश इक जल आकाशा, मेघाकाश महा आकाशा॥ ७२॥
चारि भेद ये नभके जानहु, पुनि चेतनके तथा पिछानहु।
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये, ईश ब्रह्म हिय जानै रहिये॥ ७३॥

जब इनको तू रूप पछानै, निज शंका तब ही सब भानै।
याते सुन इनको अब भेदा, नशै सुनत जन्मादिक खेदा॥ ७४॥
जल पूरित घट कूं जु दे, जितनो नभ अवकाश।
युक्ति निपुण पण्डित कहैं, ताकूं घट आकाश॥ ७५॥
जल पूरित घटमैं जु पुनि, ह्वै नभको आभास।
घटाकाश युत विज्ञ जन, भाषत जल आकाश॥ ७६॥
जो जल मैं आकाशको, नहिं प्रतिबिम्ब लखाइ।
थोरे मैं गम्भीरता, ह्वै प्रतीत किहिं भाइ॥ ७७॥
यातैं जलमैं व्योमको, लखि आभास सुजान।
रूप रहित जिमि शब्द तैं, ह्वै प्रतिध्वनि को भान॥ ७८॥
जो मेघहि अवकाशदैं, पुनि तामैं आभास।
तिन दोनों कूं कहत हैं, बुधजन मेघाकास॥ ७९॥
वर्षत मेघ अनन्त जल, उदक सहित इहिं हेत।
दक नहिं नभ आभास बिन, इम प्रतिबिम्ब समेत॥ ८०॥
बाहर भीतर एक रस, व्यापक जो नभ रूप।
महाकाश ताकूं कहैं, कोविद बुद्धि अनूप॥ ८१॥
चतुर्भांति नभके कहे, लक्षण श्रुति अनुसार।
अब चेतनके शिष्य सुन, जासूं लहै विचार॥ ८२॥
मति वा व्यष्टि अज्ञानको, अधिष्ठान चैतन्य।
घटाकाश सम मानिये, सो कुटस्थ अजन्य॥ ८३॥
काम कर्मयुत बुद्धि मैं, जो चेतन प्रतिबिम्ब।
जीव कहैं विद्वान् तिहिं, जल नभ तुल्य सबिम्ब॥ ८४॥
अधिष्ठान कूटस्थ सैं, ह्वै आभास बहाल।
रक्त पुष्प ऊपर धर्यो, स्फटिक होय जिमि लाल॥ ८५॥
बुद्धि मांहि आभास जो, पुण्य पाप फल भोग।
गमन आगमन सो करै, नहिं चेतन मैं जोग॥ ८६॥

मिथ्या नभ घट सङ्ग ज्यूं, लहै क्रिया बहुभांति।
घटाकाश अक्रिय सदा, रहै एकरस शान्ति॥ ८७॥
अथवा व्यष्टि अज्ञान मैं, जो चेतन आभास।
अधिष्ठान कूटस्थ युत, कहैं जीव पद तास॥ ८८॥
चित् छाया माया विषै, अधिष्ठान संयुक्त।
मेघ व्योम सम ईश सो, अन्तर्यामी मुक्त॥ ८९॥
अन्दर बाहिर एक रस, जो चेतन भरपूर।
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर॥ ९०॥
चतुर्भान्ति चेतन कह्यो, तामैं मिथ्या जीव।
पुण्य पाप फल भोगवै, चित् कूटस्थ सुशीव॥ ९१॥
कर्मी छाया देत फल, नहि चैतनमें योग।
सो असङ्ग इक रूप है, जानैं भिन्न कुलोग॥ ९२॥
अहो शिष्य तैं प्रश्न जु कीने, तिनके ये उत्तर मैं दीने।
कहे जु तैं तरुमैं द्वै पच्छी, इक भोगै इक आहि अनिच्छी॥ ९३॥
ते चेतन आभास लखाये, नभ छाया ज्यूं भिन्न बताये।
कह्यो भिन्न कर्मी फलदाता, मति माया छाया सो ताता॥ ९४॥
जीव ईश मैं चेतन रूपं, भेद गन्ध तैं रहित अनूपम्।
यातैं "अहं ब्रह्म" यह जानौं, "अहं" शब्द कूटस्थ पिछानौ॥ ९५॥
"ब्रह्म" सब्दको अर्थ सु भाख्यो, महाकाश सम लक्ष्य जु राख्यो।
"अहं ब्रह्म" नहिं जौ लौं जानै, तौं लौं दीन दुखित भय मानै॥ ९६॥
कहो गुरू ह्वै कौन कूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान?।
नहिं जानूं मै आपके, भाषे बिना सुजान॥ ९७॥
कहूं अवस्था सात, सुनहु शिष्य अब आभास की।
नहिं चेतनकी तात, तिनही मैं यह ज्ञान है॥ ९८॥
इक अज्ञान आवण सुजानौ, भ्रांति द्विविध पुनि ज्ञान पिछानौ।
शोक नाश अति हर्ष अपारा, सप्त अवस्था इमि निर्धारा॥ ९९॥

नहिं जानूं मैं ब्रह्म कूं, याकूं कहत अज्ञान।
ब्रह्म है न, नहिं भान ह्वै, यह आवरण सुजान॥ १००॥
जन्म मरण गमनागमन, पुण्य पाप सुख खेद।
निज स्वरूप मैं भान है, भ्रान्ति बखानी वेद॥ १०१॥
द्वै विध ज्ञान बखानिये, इक परोक्ष अपरोक्ष।
"अस्ति ब्रह्म" परोक्ष है, "अहं ब्रह्म" अपरोक्ष॥ १०२॥
"नहीं ब्रह्म" या अंशको, करै परोक्ष विनाश।
सकल अविद्या जालकूं, दूजो नशै प्रकाश॥ १०३॥
जन्म मरण मो मैं नहीं, नहीं सुख दुःखको लेश।
किन्तु अजन्य कूटस्थ मैं, भ्रान्ति नाश यह बेस॥ १०४॥
संशय रहित स्वरूपको, होइ जु अद्वय ज्ञान।
तब उपजै हिय मोद तव, सो तूं हर्ष पिछान॥ १०५॥
कही अवस्था सात मैं, तोकूं शिष्य सुजान।
सो सगरी आभासकी, है तिन ही मैं ज्ञान॥ १०६॥
ज्ञान होत है कौन कूं, यह पूछी तैं बात।
मैं ताको उत्तर कह्यो, चहै सु पूछ अब तात॥ १०७॥
भगवान् ह्वै आभासकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
तुम भाख्यो सो मैं लख्यो, पुनि शंका इक आन॥ १०८॥
है आभास ब्रह्म तैं न्यारा, अस तुम पूर्व कियो निर्धारा।
"अहं ब्रह्म" सो कैसे जानै? आपहि भिन्न ब्रह्मतैं मानैं॥ १०९॥
जो जानैं तौ मिथ्या ज्ञाना, होई जेवरी भुजग समाना।
श्री गुरू यह सन्देश मिटावो, युक्ति सहित निज उक्ति सुनावो॥ ११०॥
"अहं" शब्दके अर्थको, सुन अब शिष्य विवेक।
तव हियके जासूं नशैं, शङ्क-कलङ्क अनेक॥ १११॥
है यद्यपि आभास मैं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
तथापि सो कूटस्थको, लहै आप अभिमान॥ ११२॥

ताको सदा अभेद है, विभु चेतन तैं तात।
बाध समैं निज रूपहू, ब्रह्म रूप दरशात॥ ११३॥
अहं वृत्ति मैं भान ह्वै, साक्षी अरु आभास।
सो क्रमतैं वा क्रम बिना, याको करहु प्रकाश॥ ११४॥
सावधान ह्वै शिष्य सुन, भाखूं उत्तर सार।
सुनत नशै अज्ञान तम, बोध भानु उजियार॥ ११५॥
एक समय ही भान ह्वै, साक्षी अरु आभास।
दूजो चेतन को विषय, साक्षी स्वयं प्रकाश॥ ११६॥
इन्द्रियके सम्बन्ध बिनु, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
कैसे ह्वै प्रत्यक्ष प्रभु? मोकूं कहो बखान॥ ११७॥
इन्द्रिय बिन प्रत्यक्ष नहिं, शिष यह नियम न जान।
बिन इन्द्रिय प्रत्यक्ष ह्वै, जैसे सुख दुःख ज्ञान॥ ११८॥
गुरूको अस उपदेश सुनि, तत्वदृष्टि बुद्धिमन्त।
ब्रह्मरूप लखि आतमा, किया भेद भ्रम अन्त॥ ११९॥
"अहं ब्रह्म" या वृत्ति मैं, निरावरण ह्वै भान।
दादू आदू रूप सो, यों हम लियो पिछान॥ १२०॥

पञ्चम तरङ्ग

वेद रु गुरू जो मिथ्या कहिये, तिनतैं भवदुःख नश्यो न चहिये।
जैसे मिथ्या मरुथलको जल, प्यास नाशको नहिं तामैं बल॥ १॥
सत्य वेद गुरू कहैं तु द्वैत भयो, गयो सिद्धान्त अद्वैत।
यों शङ्कर मत पेखि अशुद्ध, तज्यो सकल मध्वादि प्रबुद्धा॥ २॥
यह शङ्का भगवन् मुहि उपजै, उत्तर देहु दयाल न कुपिजै।
गुरू बोले शिषकी सुनि बानी, शङ्करको मत परम प्रमानी॥ ३॥
चारि यार मध्वादिक जे हैं, वेद विरूद्ध कहत सब ते हैं।
यामैं व्यास वचन सुनि लीजै, शङ्कर मतहिं प्रमाण करीजै॥ ४॥

कलिमैं वेद अर्थ बहु करि हैं, श्रीशंकर शिव तब अवतरि हैं।
जैन बुद्ध मत मूल उखारै, गंगा तैं प्रभु मूर्ति निकारै॥ ५॥
जैसे भानु उदय उजियारो, दूरि करै जगमैं अन्धियारो।
सबै वस्तु ज्यूं की त्यूं भासै, संशय और विपर्यय नाशै॥ ६॥
वेद अर्थ मैं त्यूं अज्ञाना, नशि है श्रीशङ्कर व्याखाना।
करि हैं ते उपदेश यथार्थ, नाशहि संशय अरु अयथारथ॥ ७॥
और जु वेद अर्थकूं करि हैं, ते शठ वृथा परिश्रम धरि हैं।
यूं पुराणमैं व्यास कहो है, शङ्कर मत मैं मान यही है॥ ८॥
मध्यादिको मत न प्रमानी, यह हम व्यास बचन तैं जानी।
और प्रमान कहूसो सुनिये, वाल्मीक ऋषि मुख्य जु गिनिये॥ ९॥
तिन मुनि कियो ग्रन्थ वाशिष्ठा, तामैं मत अद्वैत स्पष्टा।
श्रीशङ्कर अद्वैतहि गान्यो, तिनको मत यह हेतु प्रमान्यो॥ १०॥
वालमीक ऋषि वचन विरुद्धं, भेदभाव लखि सकल अशुद्धम्।
कियो ग्रन्थ श्री हर्ष जु खण्डन, खण्डन भेद एकता मण्डन।
लिख्यो यहां यह बहु विस्तारा, भेदभाव नहिं युक्ति सहारा॥ ११॥
और "भेदधिक्कार" जु ग्रन्था, तहां भेद खण्डनको पन्था।
कठिन दुरूह तर्क हैं ते अति, नहीं पैठिहि शिष तिन मैं ते मति॥ १२॥
यातैं कही न ते तुहि उक्ति, करै जु भेदहि खण्डन युक्ति।
अप्रमाण मत भेद लख्यो जब, खण्डनमैं युक्ति न चहियत तब॥ १३॥
भेद प्रतीति महा दुःख दाता, यम कठमैं यह ठेरत ताता।
यातैं भेदभाव चित्त त्यागहु, इक अद्वैत वादै अनुरागहु॥ १४॥
जो द्वितीयकूं मति मैं धारै, भय ताकूं यह वेद पुकारै।
ज्ञेय ध्येय मो तैं कछु औरा, लखै सु पशु यह वेद ढंढोरा॥ १५॥
शिष यातैं मध्वादिक बानी, सुनी सु बिसरहु अति दुःखदानी।
द्वैत वचन तव हियमें जौ लौं, है साक्षात् अद्वैत न तौ लौं॥ १६॥
द्वैत वचनको स्मरण जु होवै, ह्वै साक्षात् तू ताहि विगोवै।
पूर्व स्मृति साक्षात् विनाशत, सुन इक अस तोहि कथा प्रकाशत॥ १७॥

राजाको इक भर्च्छू मंत्री, राजकाज सब ताके तंत्री।
और मुसाहिब मंत्री जेते, करैं ईरषा तासूं तेते॥ १८॥
करि न सकत भर्च्छू की हाना, महाराज निज जिय प्रिय जाना।
तब सब मिल यह रच्यो उपाया, धारि दौरे दंगा मचवाया॥ १९॥
सो सुनि राजहि करी कचहरी, लिये बुलाय मुसाहिब जह री।
तिनसों कह्यो वेग चढि जावहु, दौरत धारि सुधूम नसावहु॥ २०॥
तब सब मिलि उत्तर यह दीना, सदा एक भर्च्छू हि तुम चीना।
मरनलिये अब हमहि पठावतु, भर्च्छू कूं कहु क्यों न चढावतु॥ २१॥
तब बोलयो भर्च्छू कर जोरी, महाराज सुन विनती मोरी।
आज्ञा होय मोहि यह रौरी, मारूं सकल धारि जो दौरी॥ २२॥
तब भर्च्छू कूं बोल्यो राजा, तुम चढि जाहु समारहु काजा।
ते जातहि भर्च्छू सब मारे, वणिक कृषिबल किये सुखारे॥ २३॥
भर्च्छू विजय सुन्यो तिन तब ही, राजा पै भाख्यो यह तब ही।
भर्च्छू मर्यो न सुधर्यो काजा, मिथ्या वचन सुनत ही राजा॥ २४॥
और प्रधान मुसाहिब कीनो, छत्र रू पीनस पंखा दीनो।
बंदोवस्त तिन कीने अपनहु, सुनै न राजा भर्च्छू सुपनहु॥ २५॥
सब वृतान्त भर्च्छू तब सुनिके, रूप तपस्वी धर्यो यह गुनिके।
राजा पै मुहिं जान न दै हैं, गये द्वार लग प्राणहुं लै हैं॥ २६॥
अब लग सबहि पदार्थ भोगे, देह रू इन्द्रिय रहे अरोगे।
तिय जो चारि चतुष्पद सोहत, चार फूल फल खग मन मोहत॥ २७॥
करिकर उरू मृगखुरू पुरज, केहरि सी कटि मान।
लोचन चपल तुरंग से, वरणैं चतुर सुजान॥ २८॥
कमल वदन अलसी कुसुम, चिबुक चिन्ह मति धाम।
तिल प्रसून सी नासिका, चंपक तनु अभिराम॥ २९॥
बिम्ब अधर दाडिम दशन, उरज विल्वसे धीर।
कोहरसी एडी कहत, कोविद मति गम्भीर॥ ३०॥

हेमराल सी मन्दगति, कण्ठ कपोत सुढारि।
पिक सी वाणी अति मधुर, मोर पुच्छ सम बार॥ ३१॥
गंग पयोनिधि कबहुं न त्यागत, जातै रसिक सुमन अनुरागत।
विधि तिलोत्तमा अपर बनाई, हन्यो सुन्दर जिनि सो न सुहाई॥ ३२॥
मिहिंदी जावक कर पद रागा, तिनको मैं किय निमिष न त्यागा।
और भोग तिनके उपकरना, भोगैं सबै निकट भौ मरना॥ ३३॥
अहो मूढको मम सम जगमैं, भौ लम्पट अब लग मैं भग मैं।
गीलो मलिन मूत्रतैं निशदिन, स्रवत मांसमय रूधिर जु छतबिन॥ ३४॥
चर्म लपेट्यो मांस मलीना, ऊपरि वार अशुद्ध अलीना।
इनमें कौन पदारथ सुन्दर, अति अपवित्र ग्लानि को मन्दिर॥ ३५॥
तियकी जंघ जघन्य सदा ही, रम्भा करिकर उपमित जाही।
आद्रमूत को मनु पतनारो, रुधिर मांस त्वक् अस्थि पसारो॥ ३६॥
लगत जु नीके स्थूल नितम्बा, तिनके मध्य मलिन मलबम्बा।
तट तांके ते अति दुर्गन्धा, ह्वै आसक्त तहां सो अन्धा॥ ३७॥
अधर जु थूक लार सैं भीजत, तजि ग्लानि निज मुखमें दीजत।
दृष्ट मदा नारी मदिरा भजि, शुद्धि अशुद्धि विवेक दियो तज॥ ३८॥
कहत नारिके अंग जु नीके, करत विचार लगत यूं फीके।
कपट कूटको आकर नारी, मैं जानी अब तजन बिचारी॥ ३९॥
कलाकन्द दधि पायर पेरा, तंदुल घृत व्यंजन बहुतेरा।
और विविध भोजन जो कीन्हें, तिन सबके रसना रसलीने॥ ४०॥
अब लौं भई न तृप्ति जु याकूं, यातैं वृथा पोषिता ताकूं।
क्षुधा विनाशहि बन फल कन्दा, ह्वै क्यूं पराधीन यह बंदा॥ ४१॥
गुहा महल बन बाघ घनेरा, क्यूं राजाको ह्वै हूं चेरा।
शेज शिला अरु निज भुज तकिया, निर्झर जल कर पात्र न रुकिया॥ ४२॥
बैठि इकन्त होय स्वच्छन्दा, लहिये भर्च्छू परमानन्दा।
बिन इकान्त न आनन्द कबहूं, मिले अब्धि लौं पृथ्वी सबहूं॥ ४३॥

पृथ्वी पति निरोग जुव, दृढ़ स्थूल बलवन्त।
विद्या युत तिहिं भूम मैं, मानुष सुखको अन्त॥ ४४॥
जे मानव गन्धर्व कहावत, ता नृपतैं शतगुण सुख पावत।
होत देव गन्धर्व जु औरा, तिनतै तहां सौ गुण सुख व्यौरा॥ ४५॥
सुख गन्धर्व देव को जो है, तांतै शत गुण पितरन को है।
पुनि अजान देव मैं तिन्हतैं, सौ गुण कर्म देव मैं जिन्ह तैं॥ ४६॥
मुष देव जेहैं पुनि तिनमैं, कर्म देवतैं सौ गुण जिनमैं।
जो त्रिकोलपति इन्द्र कही जै, तामैं पुनि सौ गुण गिनि लीजै॥४७॥
सब देवन को गुरू बृहस्पति, लहै इन्द्रतैं शतगुण सुखगति।
जाको नाम प्रजापति भाषत, गुरुतैं सुख सौ गुण सो राखत॥ ४८॥
ताहू तै सौ गुण ब्रह्म हि सुख, लहै न रंचक सो कबहूं दुःख।
इतने या क्रम तैं सुख पावत, तैत्तिरीय श्रुति यूं समझावत॥ ४९॥
राजातैं ब्रह्मान्त, कह्यो जु सुख सगरो लहै।
रहत सदा एकान्त, काम दग्ध जाको न हिय॥ ५०॥
ह्वै एकान्त देश मैं अस सुख, युवति पुत्र धन संग सदा दुःख।
युवति कुरूप कुबोलनि जाके, सदा शोक हिय ह्वै यह ताके॥ ५१॥
प्रभु पुरीष पंडा यह रंडा, दिय मुहि कौन पापको दण्डा।
बोलत बैन व्याल कागनिके, भेड भैंसि न्योरी नागिनिके॥ ५२॥
भूत भावती ऊटनिको है, बोल खरी को सुन षर मोहै।
रैनि जो ऊंचे स्वर हि उच्चारत, स्यार हजार न सुनत पुकारत॥ ५३॥
निर अपराध तिय बिन वैरागा, तज न बनत पाप जिय लागा।
रहत दुखी यूं निश दिन पिय मन, तिय कुबोल सुनि लखि कुरूप तन॥ ५४॥
कामिनि ह्वै जु सुरूप सुबानी, सो कुरुप तैं ह्वै दुःख दानी।
चमक चामकी पिय हि पियारी, अर्थ धर्म नशि मोक्ष बिरागी॥ ५५॥
मीठे बैन जहर जुत लडवा, खाय गंवाय बुद्धि ह्वै भडवा।
और कछू सुपनहुं नहिं देखै, काम अन्ध इक कामिनि लेखै॥ ५६॥

धन कछू मिलै जु बाहिर घर मैं, सो सब खरचै कामिनि घर मैं।
भूषन वसन ताहि पहरावै, गुरु पितु मातु न याद हु आवै॥ ५७॥
पायस पान मिठाई मेवा, देय भक्ति तैं तिय निज देवा।
नेह नाथ नाथ्यो नहिं छूटै, तिय कृसान पिय बैलहि कूटै॥ ५८॥
ज्यूं सूवा पिंजरे मैं बंधुवा, सिख्यो बोलत सुद्ध असुद्ध वा।
तैसैं जो कछु नारि सिखावत, सो गुरू मात पिता हि सुनावत॥ ५९॥
जैसे मोर मोरनी आगै, नाचि रिझाय आप अनुरागै।
तैसैं विविध विश करि तियको, मन रिझाय रिझत मन पियको॥ ६०॥
जब दुहून को मन अनुराग्यो, तब हि मदन मदिरा मद जाग्यो।
भए बावरे वसनहुं त्यागे, अति उन्मत्त घुरन पुनि लागे॥ ६१॥
प्रेत रूप धरि नग्र अमंगल, भिरि फिरि भिरत मेष मनु दंगल।
यूं लोटत मद्यपि मतवारो, गिनत मलीन गलीन न नारो॥ ६२॥
त्यूं नर नारि मदन मद अंधे, अति मलीन अंगन मैं बन्धे।
करत मदन मद भ्रम जे मनकूं, ह्वै अचरज सुनि त्यागि जन कूं॥ ६३॥
नसैं मदन मद तैं मति नरकी, लखत न ऊंच नीच पर घर की।
तियहु बावरी मदन बनाई, क्रिया दुःखद जिंहि ह्वै सुखदाई॥ ६४॥
प्रबल काम मदिरा मद जागै, तब द्विज तिय धानक ते लागै।
पिये मदन मदिरा नर नारी, ऐसैं करत अनन्त खुवारी॥ ६५॥
कामदोष यूं नरहिं विगोवत, सोई प्रगट सुन्दरी तिय जोवत।
यातें अति सुरूप तिय दुखदा, ताको त्याग कहत मुनि सुखदा॥ ६६॥
जो सुरूप तिय मैं अनुरागत, विष सम दुःखद पेखि नहिं भागत।
उभै लोककी करत सु हानी, मुनि जन गन गुन साख बखानी॥ ६७॥
जो नानाविध भोजन खावै, रस ताको फल बिन्दु उपावै।
जीवन बिन्दु अधीन सबनको, नसत शोक बिन्दु हूं तैं मनको॥ ६८॥
ह्वै जब जनको मन मलवासी, करत शोक अति धरत उदासी।
रुधिर निवास धरत मन जब हूं, चंचल अधिक रजो गुण तबहूं॥ ६९॥

जब मन करत बिन्दु मैं वासा, तबै शोक चंचलता नाशा।
पुनि आपहि बलवत जन जानै, ह्वै प्रसन्न शुभ कारज ठानै॥ ७०॥
बिन्दु अधिक होवै जा जनमें, सुन्दर कान्ति रूपता तनमें।
बिन्दु हुं को तनुमैं उजियारो, नशै बिन्दु तन मन हतियारो॥ ७१॥
जाको बिन्दु न कबहुं नाशै, बलि न पलित तिहि तन परकासै।
जोगी करत खेचरी मुद्रा, तांते बिन्दु राखि ह्वै भदा॥ ७२॥
अष्ट सिद्धि जे धारत जोगी, बिन्दु खसै हारत ते भोगी।
अस अति उत्तम बिन्दु जु जग मैं, तिह तिय छीनि लेत निज भग में॥ ७३॥
ज्यों किसान बेलनमें ऊषहिं, पेरत लेत निचोरि पियूषहि।
बार बार बिलनमें धारहि, ह्वै असार दथ्था तब जारहिं॥ ७४॥
त्यूं तिय भीचि भुजन मैं पिय कूं, भरत योनि घट षीचि अमीकूं।
पुनि पुनि करत क्रिया नित तौ लौं, शेष बिन्दुको बिन्दु न जौं लौं॥ ७५॥
कियो असार नारि नर देहा, खींच फुलेल फूल ज्यूं खेहा।
भौ अकाम सब तांहि जरावै, सूके बैन मुरार लगावै॥ ७६॥
ह्वै जु सुरूप जोर धन भारी, ता नर पैं नारी बलिहारी।
करि सुरूप धन बलको अन्ता, कहत ताहि तूं काको कन्ता॥ ७७॥
तिहिं पुनि मिलन चहे जु अनारि, कर धरपै धरतहुं दे गारि।
नाक चढाय आंखिहूं मोरै, जाय न पति सेजहुं के धोरै॥ ७८॥
कोटि वज्र सङ्घात जु करिये, सबको सार खींचि इक धरिये।
तियके हिय सम सो न कठोरा, ऋषि मुनि गण यह देत ढंढोरा॥ ७९॥
करत गुमान हठत तिय ज्यूं ज्यूं, चिपटत शठ मति जन मन त्यूं त्यूं।
कबहुंक ताको वांछित करि कै, मरण अंत छोड़त न पकरिकै॥ ८०॥
पढ़यो पुरान वेद स्मृति गीता, तर्क निपुन पुनि किन हुं न जीता।
करत अधीन ताहि तिय ऐसैं, बाजीगर बन्दर कूं जैसैं॥ ८१॥
सब कछु मनभावत करवावत, पढ़ पशु हि भल भांति नचावत।
उक्ति जुगाति सब तब ही बिसरै, जब पण्डित पढि तिय पै ढिसरै॥ ८२॥

जब कबहुं सुमरत यह वेदा, तब तिय मैं मानत कछु खेदा।
तिहि त्यागन की इच्छा धारै, पुनि तिय नैन सैन सर मारै॥ ८३॥
जहर कटाक्ष नैन सरबोरे, तानि कमान भौंह जुग जोरे।
मारत सारत हिय सब जगको, विज्ञहु बचत न धन सठ गनको॥ ८४॥
भयो न तियमैं तीव्र विरागा, यूं मति मंद करत पुनि रागा।
करत विविध आज्ञा ज्यूं चाकर, हुकम करै बैठी मनु ठाकर॥ ८५॥
जो नर नार नयन सर बीधे, तिनके हिये होत नहीं सीधे।
भलो बुरो सुख दुःख सब बिसरत, ते कैसे भव दुःख तै निसरत॥ ८६॥
नारी बुरी वेश्या अरू परकी, तीजी नरक निशानी घरकी।
तजत विवेकी तिहूं मैं नेहा, करै नेह तिह शठ मुख खेहा॥ ८७॥
अर्थ धर्म और मोक्षकूं, नारि बिगारत ऐन।
सब अनर्थ को मूल लखि, तजै ताहि ह्वै चैन॥ ८८॥
पुत्र सदा दुख देत यूं, बिना प्राप्ति दुःख एक।
गर्भ समय दुख जन्म दुःख, मरै तु दुःख अनेक॥ ८९॥
गर्भ धरत जौं लौ नहिं नारी, दुख दम्पत्ति मन तौ लौं भारी।
ह्वै जु गर्भ यह चिन्तन नासै, पुत्री होय कि पुत्र प्रकासै?॥ ९०॥
गर्भ गिरनके हेतु अनन्ता, तिनतैं डरत करत अति चिन्ता।
ह्वैजु पूत नव मास बिहानै, जननी जनक अधिक दुख सानै॥ ९१॥
नव ग्रह मैं इक द्वै नहिं बिगरै, अस जन को जन्म न जग सगरै।
बिगरे ग्रह की निस दिन चिन्ता, करत मात पितु बैठि इकन्ता॥ ९२॥
सिसु उदास ह्वै जब तजि बोबा, तब दोऊ मिलि लागत रोबा।
यूं चिन्तन कछु गए महीने, दांत पूतके निकसे झीने॥ ९३॥
मरत बाल बहु निकसत दंता, तब यह चिन्ता दुःख तिय कन्ता।
जिये दूबरो दुःख तैं बारो, देखि चुराहो धरत उतारो॥ ९४॥
म्लेच्छ चमार चूहरे कोरी, तिनतैं झरवावत द्विज घोरी।
सइयद ख्वाजा पीर फकीरा, धोकत जोरत हाथ अधीरा॥ ९५॥

जाकूं हिन्दू कबहु नहिं मानै, पुत्र हेतु तिहि इष्ट पिछानै।
भैंरों भूत मनावत नाना, धरत सिवा बलि भूमि मसाना॥ ९६॥
धानकको डमरू घरि बाजै, कर जोरत पूजत नहिं लाजै।
और जन्त्र ताबीज घनेरे, लिखि मढवाय पूत गर गेरे॥ ९७॥
निज कुलमैं एक अच्युत पूजा, किनहु न सपनेहु सुमर्यो दूजा।
सो कुल नेम पूत हित त्याग्यो, व्यभिचारी ज्यूं जहँ तहँ लाग्यो॥ ९८॥
होत सीतलाको जब निकसन, नसत मातु पितु मनको विकसन।
स्त्रान क्रिया तजि रहित मलीना, परमदेव गदहा कूं कीना॥ ९९॥
मोरि वांग बकसहु शिशु मोरा, गदहा मात चराऊं तोरा।
यूं कहि चना गोद मैं धारै, बिनति करि गदहा कूं चारैं॥ १००॥
अस अन्नत दुख तैं शिशु पारन, जुवा होत लौं और हजारन।
उमर पूत की ह्वै जो थोरी, मरि हैं करहु उपाय करोरी॥ १०१॥
मरे मात पितु कूटहिं माथा, मानि आपकूं दीन अनाथा।
हाय हाय करि निस दिन रोवैं, करि धिक धिक निज जन्म विगोवैं॥ १०२॥
पूत मरन को ह्वै दुख जैसो, लखत सपूत अपूत न तैसो।
जो जीवै तो होतहि तरुना, लगति नारिके पोषण भरना॥ १०३॥
निज अनेक यत्ननि प्रतिपारो, तिनकूं जलप्यावन है भारौ।
रजनि सेज पै सिखवै नारी, तव पित मात देहिं मुहिं गारी॥ १०४॥
ह्वै सपूत तौ प्रातहि उठिके, नवै दूरतै माथन गठिके।
चहैं मात पित आवै नेरे, पूत न सन्मुख आंखिहु हेरे॥ १०५॥
ह्वै कपूत तौ उठतहि प्राता, वचन गारि सम बाकि असुहाता।
जुदौ होय ले सब घरको धन, दे पित मातहि इक तनको तन॥ १०६॥
फेरि सम्भारत कबहु न तिनकूं, पोषत सब दिन तिय निज तनकूं।
देखि, लेत पित मात उसासा, या विधि पुत्र सदा दुखराशा॥ १०७॥

करि विचार यूं देखिये, पुत्र सदा दुःख रूप।
सुख चाहत ये पूत तैं, ते मूढन के भूप॥ १०८॥
तजि तिय पूत जो धन चहै, ताके मुख मैं धूर।
धन जोरन रक्षा करन, खरच नास दुःख मूर॥ १०९॥
जो चाहै माया बहु जोरी, करै अनर्थ सु लाख करोरी।
जाति धर्म कुल धर्म सुत्यागै, जो धनकूं जोरन जन लागै॥ ११०॥
बिना भाग तदपि न धन जुरि हैं, जुरै तो रक्षा करि करि मरि हैं।
खरचत धन घटि है यह चिन्ता, नाशै निशि दिन ताप अनन्ता॥ १११॥
सदा करत यूं दुःख धन मनकूं हैं, चहै ताहि धिक् धिक् तिहिं जनकूं।
युवति पूत धन लखि दुःख दाता, तज्यो भर्च्छू ममता को नाता॥ ११२॥
भर्च्छू बन एकान्त मैं, गयो कियो चित्त शान्त।
भयो नयो दीवान तिन, सुन्यो सकल वुत्तान्त॥
सुन्यो सकल वृतान्त, चित्त यह उपजै ताके।
जो नृप जीवत सुनै, मिलै वा काहू नाके॥
तौ झूठे हम हों हि, भूप दे सबको दण्डा।
यातैं अब मिलि कहौ, भर्च्छु भौ प्रेम प्रचण्डा॥ ११३॥
करि सलाह यह परस्पर, गये कचहरी बीच।
सबहिं कही यह भूप तैं, भर्च्छु प्रेत भौ नीच॥ ११४॥
राख लगाये देह मैं, मिलै जाहि बतरात।
तिहिं मारत सो नर बचत, जो तिहिं देखि परात॥ ११५॥
सुनि भूपहु निश्चय कियो, भर्च्छु मरि भौ प्रेत।
सांच झूठ भूप न लखत, ह्वै जु प्रमाद अचेत॥ ११६॥
कछु दिन बीते भूप तब, मारन गयो शिकार।
पैठ्यो गिरिवन सघन मैं, जहं मृगराज हजार॥ ११७॥

तपत तहां इक तरू तरै, भर्च्छू निज दीवान।
पेखि ताहि भाज्यो उलटि, मानि प्रेत दुख दान॥ ११८॥
भर्च्छू मर्यो रु परेत भयो यह, वाक्य असत्य हु सत्य पिछाना।
देखि लियो निज आंखिन जीवत, तौ परेतहु मानि भगाना॥ ११९॥
वंचकतै सुनि द्वैत कथा, मति मैं विसवास करै जु अजाना।
ब्रह्म अद्वैत लखै परतच्छ हु, तौहु न ताहि हिये ठहराना॥ १२०॥
भेद वचन विश्वास करि, सुनत जो कोऊ अजान।
सो जन दुख भुगतै सदा, ह्वै न ब्रह्मको ज्ञान॥ १२१॥
याते सुनै जु भेदके, वचन लखै सु असत्य।
तब ही ताकूं ज्ञान ह्वै, महावाक्य तैं सत्य॥ १२२॥
सिष तैं सुनी जु भेद कहानी, जानी झूठते नरक निशानी।
तिनके कहन हार सब झूठै, पुरुषार्थ सुखतैं सठ रूठै॥ १२३॥
तिनको संग न कबहु कीजै, ह्वै जु संग न वचन सुनी जै।
जो कहुं सुनहु तु सुनत हि त्यागहु, म्लेच्छ जैन वच सम लखि भागहु॥ १२४॥
जो मिथ्या ह्वै दैसिक वेदा, कैसे करही भव दुःख छेदा?।
याको अब उत्तर सुनि लीजै, मिथ्या दुख मिथ्या तैं छीजै॥ १२५॥
वेदरु गुरू सत्य जो होवै, तौ मिथ्या भवदुख नहिं खोवै।
यामैं इक दृष्टान्त सुनाऊं, जातैं तब सन्देह नशाऊं॥ १२६॥
सुरपति इन्द्र स्वर्ग मैं जैसो, प्रबल प्रताप भूप इक ऐसो।
भीम समान सूर बहतेरे, तिनके चहुधा डेरे गेरे॥ १२७॥
जोधा लै निज हथियारन, खरै रहे तिहि द्वार हजारन।
अन्दिर मन्दिर ड्योढी ठाढे, लिये खड्ग कोसन तैं काढे॥ १२८॥
ऊंचो महल अटारी जामैं, फूल सेज सोवै नृप तामैं।
पंछी हू पहुंचन नहिं पावै, तहां और कैसे चलि जावै॥ १२९॥

तहां भूप देख्यो अस सुपना, पकर्यो पैर गादरी अपना।
भूप छुडायो चाहत निज पग, तजत न गीदरी पकरि जु पग रग॥ १३०॥
तब राजा यूं खरो पुकारै, है को अस जो गीदरी मारै।
जोधा जो ठाडै निज द्वारा, तिन रंचकहु न दियो सहारा॥ १३१॥
तब नृप दण्ड लियो निज करमैं, आपुहि मार्यो स्यारनि सिरमैं।
लगत दण्ड भौ ताको अन्ता, तब निसरै पग रगतैं दन्ता॥ १३२॥
दांत लगे गाढे नृप पग मैं, यूं लंगरात सु चालत मगमैं।
तब चाल्यो ले लाठी करमैं, पहुंच्यो घावरिया के घरमैं॥ १३३॥
तांहि कह्यो फोहा अस दीजै, घाव पांव को तुरत भरीजै।
घावरिया नृपतैं यह भाख्यो, फोहा नहिं तयार धरि राख्यो॥ १३४॥
जो तूं दै पैसा इक मोकूं, तो तयार करि देहूं तोकूं।
तबे उलट्यो नृप लाठी टेका, नहीं दैन कूं कौडिहु एका॥ १३५॥
लाग्यो सोच करन टरि घरतैं, बूझै बात कौन बिन जरतैं।
जो मैं होत धनी बड़ भागा, आवतु घर घावरिया भागा॥ १३६॥
माता पिता बान्धव सुत नारी, करत प्यार स्वार्थ तैं भारी।
जो नहिं स्वार्थ सिद्धी पावै, तो इनकूं देख्यो हु न भावै॥ १३७॥
जा बिन घरी एक नहीं रहते, दुख अपार बिछुरै सब लहते।
जब देखै आयो घर पौरी, घरके मिलत भाजि भरि कौरी॥ १३८॥
विधि अधीन कोढी सो होवै, सब अंगनि मैं पानी चोवै।
अरु झरि परी आंगुरी जाके, भिन भिनात मुख माखी ताके॥ १३९॥
कहत ताहि ते घरके प्यारे, मर पापी अब तौ हतियारे।
जिहि देखत अखियां न अघानी, तिहि लखि ग्लानि वमन ज्यूं आनी॥ १४०॥
जो तिय हिय लागत पति प्यारो, किय न चहत पल उरतै न्यारो।
ताकी पवन बचायो लौरै, भिरै जु वसन तु नाक सिकोरै॥ १४१॥

जिहिं पितुमात गोदमैं लेते, सकुचित तिहि करते कछु देते।
मिलत भ्रात जो भरि भुज कोरी, सो बतरावत बीच दै डोरी॥ १४२॥
ऐसे जग स्वारथको सारो, विन स्वारथ को काको प्यारो।
मुहि स्वारथ जोग न विधि कीनो, यातैं इन फोहा नहिं दीनो॥ १४३॥
यूं चिन्तित इक मुनि तिहिं भेट्यो, तिन दै जरि घाव दुख मेट्यो।
निद्रातैं जाग्यो नृप जब ही, घाव दर्द मुनि नासे तब ही॥ १४४॥
शिष यह तुहि दृष्टान्त प्रकास्यो, लखि मिथ्या तैं मिथ्या नास्यो।
मिथ्या दुख देख्यो जब राजा, साच समाज न किय कछु काजा॥ १४५॥
मिथ्या दुख देख्यो जब राजा।
साच समाज न किय कछु काजा॥ १४६॥
यद्यपि मिथ्या मरुथल पानी, तातैं किनहु न प्यास बुझानी।
तदपि विषम दृष्टान्त सु तेरो, सत्ता भेद दुहुन में हेरो॥ १४७॥
समसत्ता भव दुख गुरू वेदा, यूं गुरू वेद करत भवच्छेदा।
आपस मैं समसत्ता निजकी, लखि साधक बाधकता तिनकी॥ १४८॥
ब्रह्म भिन्न मिथ्या सब भाखौ, तिनको भेद हेतु किही राखौ
उपज्यो यह मोकूं सन्देहा, प्रभु ताको अब कीजै छेहा॥ १४९॥
सकल अविद्या कारज मिथ्या, शिष! तामैं रंचक हु न तथ्या।
जा अज्ञान तैं उपजत जोई, ताके ज्ञान बाध तिहिं होई॥ १५०॥
भगवन् ब्रह्म अज्ञान तैं, जो उपजै संसार।
सो किंहि क्रम तैं होत है, कहो मोहिं निर्धार॥ १५१॥
जैसे स्वप्न होत बिन क्रमतै, त्यूं मिथ्या जग भासत भ्रमतैं।
जो ताको भ्रम जान्यो लौरै, सो मरूस्थल जल वसन निचोरै॥ १५२॥
उपनिषदन मैं बहुत विधि, जगत् उत्पत्ति प्रकार।
अभिप्राय तिनको यही, चेतन भिन्न असार॥ १५३॥

जीव ईश भेदहीन चेतन स्वरूप माँहि,
माया सो अनादि एक सांत ताहि मानिये।
सत औ असत तैं विलक्षण स्वरूप ताको,
ताहि कूं अविद्या औ अज्ञान हु बखानिये॥ १५४॥
चेतन सामान्य न विरोधी ताको साधक है,
वृत्तिमैं आरूढ़ वा विरोधी वृत्ति जानिये।
माया मैं आभास अधिष्ठान माया मिल,
ईस सरवज्ञ जग हेतु पहचानिये॥ १५५॥
मलिन सत्त्व अज्ञान मैं, जो चेतन आभास।
अधिष्ठान युत जीव सो, करत कर्म फल आस॥ १५६॥
जीवनके पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईस,
इच्छा होय जीव भोग जग उपजाइये।
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचौ तहां,
शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुन गाइये॥
सत्त्व अंश पंचन को मेलि उपजत सत्त्व
रजोगुण अंश मिलि प्राण त्यूं उपाइये।
एक एक भूत सत्त्व अंश ज्ञान इन्द्रिय रचै,
कर्म इन्द्रिय रजोगुण अंश तैं लखाइये॥ १५७॥
भूत अपंचीकृत औ कारन, इतनी सूक्षम सृष्टि पिछान।
पंचीकृत भूतनते उपज्यो, स्थूल पसारो सारो मान॥
कारण सूक्षम स्थूल देह अरु, पंच कोश इन ही मैं जान।
करि विवेक लखि आतम न्यारो, मंजु इषीका तैं ज्यूं भान॥ १५८॥
स्थूल देहको भान न होवै, स्वप्न मांहि लखि आतम ज्ञान।
सूक्ष्म ज्ञान सुषुप्ति समै नहिं, सुख स्वरूप ह्वै आतमभान।

भासै, भये समाधि अवस्था, निरावरण आतम, न अज्ञान।
ऐसै तीन देह व्यभिचारी, आतम अनुगत न्यारो जान॥ १५९॥
पंच कोशतैं आतम न्यारो, जानि सुजानहु ब्रह्म स्वरूप।
तातैं भिन्न जु दीखै सुनिये, सो मानहु मिथ्या भ्रम कूप॥
अधिष्ठान मिथ्या न बिगारै, स्वप्नै भीख न निर्धन भूप।
सब कुछ कर्ता तऊ अकर्ता, तव अस अद्भुत रूप अनूप॥ १६०॥
नाहिं खपुष्प समान प्रपञ्च तु, ईश कहा करता जु कहावै।
साक्ष्य नहीं इम साक्षि स्वरूप न, दृश्य नहीं दृक् काहि जनावै।
वंध हु होय तु मोक्ष बनै अरु, होय अज्ञान तु ज्ञान नशावै।
जानि यही करतव्य तजै सब, निश्चल होत हि निश्चल पावै॥ १६१॥
यही चिह्न अज्ञानको, जो माने कर्त्तव्य।
सोई ज्ञानी सुधर नर, नहिं जाकूं भवितव्य॥ १६२॥
एक अखंडित ब्रह्म असंग, अजन्म अदृश्य अनूप अनामैं।
मूल अज्ञान न सूक्ष्म स्थूल, समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं।
ईश न सूत्र विराट न प्राज्ञ न, तैजस् विश्व स्वरूप न जामैं।
भोग न योग न बन्ध न मोक्ष, नहीं कछु वामैंरूहै सब वामैं॥ १६३॥
जाग्रत मैं जु प्रपंच प्रभासत, सो सब बुद्धि विलास बन्यो है।
ज्यूं सुपने मंहि भोग्य न भोग, तऊं इक चित्र विचित्र जन्यो है।
लीन सुषुपति मैं मति होत हि, भेद भगै इक रूप सुन्यो है।
बुद्धिरच्यो जु मनोरथ मात्र सु, निश्चल बुद्धि प्रकाश भन्यो है॥ १६४॥
जाके हिये ज्ञान उजियारो, तम अन्धियारो खरो विनाश।
सदा असंग एकरस आतम, ब्रह्मरूप सो स्वयं प्रकाश।
ना कछु भयो न है नहिं ह्वै है, जगत् मनोरथ मात्र विलास।
ताको प्राप्ति निवृत्ति न चाहत, ज्यूं ज्ञानीके कोऊ न आस॥ १६५॥

देखै सुनै, न सुनै, न देखै, सब रस गहे रु लेत न स्वाद।
सूंघि परसि परसै न न सूंघै, बैन न बोलै करै विवाद।
ग्रहि न ग्रहै मल तजैन त्यागै, चलै नहीं अरु धावत पाद।
भोगै युवति सदा सन्यासी, शिष लखि यह अद्भुत संवाद॥ १६६॥
निज विषयनमैं इन्द्रिय बर्तैं, तिनते मेरो नाहीं संग।
मैं इन्द्रिय नहिं मम इन्द्रिय नहिं, मैं साक्षी कूटस्थ असंग।
त्यागहुँ विषय कि भोगहुँ इन्द्रिय, मोकूं लगै न रंचक रंग।
यह निश्चल ज्ञानीको जार्तैं, कर्ता दीखै करै न अङ्ग!!॥ १६७॥
माटीको कारज घट जैसे, माटी ताके बहार मांहि।
जल तैं फैन तरंग बुद बुदा, उपजत जल तैं जुदै सु नाहिं।
ऐसै जो ताको है कारज, करण रूप पिछानहु ताहिं।
कारण ईश सकल को "सो मैं", लय चिन्तन जानहु विध याहि॥ १६८॥
ध्यान अहंग्रह प्रणव रूपको, कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार।
अक्षर प्रणव ब्रह्म ममरूप सु, यूं अनुवल निज मति गति धार।
ध्यान समान आन नहिं याके, पंचीकरण प्रकार विचार।
जो यह करत उपासन सो मुनि, तुरत नसै संसार अपार॥ १६९॥
जो यह निर्गुण ध्यान ह्वै तो, सगुण ईश करि मनको धाम।
सगुण उपासन हू नहिं ह्वै तो, करि निष्काम कर्म भजि राम॥
जो निष्काम कर्म हू नहिं ह्वै, तो करिये शुभ कर्म सकाम।
जो सकाम कर्म हूं नहिं होवै, तौ शठ बारबार मरि जाम॥ १७०॥
ओंकारको अर्थ लखि, भयो कृतार्थ अदृष्टि।
पढै जु याहि तरंग तिहि, दादू करहु सुदृष्टि॥ १७१॥

चेतन भिन्न अनात्म सब, मिथ्या स्वप्न समान।
यूं सुनि बोल्यो तीसरो, तर्क दृष्टि मतिमान्॥ १॥
पहिली जानै वस्तुकी, स्मृति स्वप्न मैं होय।
जाग्रत मैं अज्ञात अति, ताहि लखै नहिं कोय॥ २॥
अथवा स्थूलहिं लिङ्ग तजि, बाहिर देखत जाय।
गिरि-समुद्र-वन-वाजि-गज, सो मिथ्या किहिं भाय॥ ३॥
यह हस्ती आगै खर्यो, ऐसो होवै ज्ञान।
स्वप्न मांहि स्मृति रूप सो, कैसे होय सुजान॥ ४॥
बाहिर लिंग जु नीकसे, देह अमंगल होय।
प्राण सहित सुन्दर लसै, यातैं लिंग हि जोय॥ ५॥
यातैं अंतर ऊपजै, त्रिपुटि सकल समाज।
वेद कहत या अर्थ कूं, सब प्रमाण सिरताज॥ ६॥
साधन सामग्री बिना, उपजै झूठ सु होय।
बिन सामग्री ऊपजै, यों तिहि मिथ्या जोय॥ ७॥
बिन सामग्री उपजत यातैं, स्वप्न सृष्टि सब मिथ्या तातैं।
देश कालको लेश न जामैं, सर्व जगत् उपजत है तामैं॥ ८॥
स्वप्न समान झूठ जग जानहु, लेश सत्य ताकूं मति मानहु।
जाग्रत् मांहि स्वप्न नहिं जैसे, स्वप्न मांहि जाग्रत् नहिं तैसैं॥ ९॥
लाख हजर न कल्पको, यह उपज्यो संसार।
तामैं ज्ञानी मुक्त ह्वै, बन्धे अज्ञ हजार॥ १०॥
झूठो स्वप्न समान जो, क्षण घटिका ह्वै जाम।
बद्ध कौन को मुक्त है, श्रवणादिक किह काम॥ ११॥

अगृध देवकूं स्वप्न मैं, भ्रम उपज्यो जिहिं रीति।
शिष तोकूं यह ऊपजी, बन्ध मोक्ष परतीति॥ १२॥
जो विभु सत्य प्रकाश तैं, परकाशत रवि चन्द।
सो साक्षी मैं बुद्धि को, शुद्ध रूप आनन्द॥ १३॥
नाशै विघ्न समूल तैं, श्री गणपति को नाम।
जा चिन्तन बिन ह्वै नहीं, देवन हूं के काम॥ १४॥
असुरनको संहारक, लक्ष्मी पारवती-पति।
तिन्हैं प्रणाम हमार, भजतन कूं संतत भजै॥ १५॥
जा शक्ति की शक्ति लहि, करे ईश यह साज।
मेरी वाणी में बसहु, ग्रंथ सिद्धि के काज॥ १६॥
बन्ध हरण सुख करण श्री, दादू दीन दयाल।
पढै सुनै जो ग्रन्थ यह, ताके हरहु जंजाल॥ १७॥
वेदवाद वृक्ष बन भेदवादी वायु आय,
पकर हिलाय क्रिया कण्टक पसारिकै।
सरल सुशुद्ध शिष्य कंज पुनि तोरि गेरि,
सूलन मैं फेरत फिरत फेरि-फारि कै॥ १८॥
पेखी सु पथिक भग-वान जानि अनुचित,
अंकमैं उठाय ध्याय व्यासरूप धारिकै।
सूत्रको बनाय जाल वनको विभाग कीन्ह,
करत प्रणाम ताहि निश्चल पुकारिके॥ १९॥
कोउक शिष्य उदारमति, गुरूके शरणै जाय।
प्रश्न कियो कर जोरिके, पाद-पद्य सिर नाय॥ २०॥
भो भगवन् मैं कौन? यह, संसृति कातैं होइ?।
हेतु मुक्तिको ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ?॥ २१॥

सत् चित् आनन्द रूप तूं, ब्रह्म अजन्म असंग।
विभु चेतन माया करे, जगको उत्पत्ति भङ्ग॥ २२॥
हेतु मोक्षको ज्ञान इक, नहीं कर्म नहिं ध्यान।
रज्जु-सर्प तब ही नशै, होय रज्जुको ज्ञान॥ २३॥
शिष्य कह्यो जो तोहि मैं, सर्व वेदको सार।
लहै ताहि अनयास ही, संसृति नशै अपार॥ २४॥
लघु-गुरू गुरू-लघु होत है, वृत्त होत उच्चार।
रू ह्वै अरुकी ठौर मैं, अब की ठौर बकार॥ २५॥
संयोगी क्ष न क पर ख न, नहीं टवर्ग णकार।
भाषा मैं रि ऌ हू नहीं, अरु तालव्य शकार॥ २६॥
दीनता कूं त्यागि नर अपनो स्वरूप देखि,
तू तौ शुद्ध ब्रह्म अज दृश्य को प्रकाशी है।
आपनै अज्ञानतै जगत् सब तूही रचै,
सर्वको संहार करै आप अविनाशी है॥ २७॥
मिथ्या परपञ्च देखि, दुःख जिन आनि जिय,
देवनको देव तू तो सब सुख राशी है।
जीव जग ईश होय, माया सै प्रभासै तूं हि,
जैसे रज्जू सांप सीप रूप ह्वै प्रभासी है॥ २८॥
राग जारि लोभ हारि द्वेष मारि मार वारि,
बार बार मृगवारि पारवार पेखिये।
ज्ञान-भानु आनि तम तम तारि भाग त्याग,
जीव सीव भेद छेद वेदन सु लेखिये॥ २९॥
वेदको विचार सार आपकूं संभारि यार,
टारि दास प्राश आश ईशकी न देखिये।

निश्चल तू चल न अचल चल दल छल,
नभ नील तल मल तासूं न विशेषिये॥ ३०॥
जाकूं उपमा दीजिये, सो उपमेय बखानि।
जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमानि॥ ३१॥
बन्ध मोछ गेह देहवान् ज्ञानवान् जान,
राग रू विराग दोई ध्वजा फहरात है।
विषै विषै सत्य भ्रम, भ्रममति वात तात,
हल-लात प्रात-रात घरी न ठह रात है॥ ३२॥
साछ्य साछी पूतरी अनूजरी रु ऊजरी द्वै,
देखि रागी त्यागी ललचात जन जात है।
चञ्चल अचल भ्रम ब्रह्म लखि रूप निज,
दुःखकूप आनन्द स्वरूपमैं समात है॥ ३३॥
त्रिविध लच्छना कहत हैं, कोविद बुद्धि निधान।
जहती अरू अजहती पुनि, भाग त्याग जिय जान॥ ३४॥
आदि दोइ नहिं सम्भवै, महावाक्य मैं तात।
भाग त्याग तैं रूप निज, ब्रह्मरूप दरसात॥ ३५॥
अब लच्छना प्रभु कहत काकूं? देहु यह समझाय।
पुनि भेद ताके तीनि तिनके, लच्छनहु दरशाय॥ ३६॥
श्रुति चित्त निज एकाग्र करि, अब शिष्य सुनि मम बानि।
ज्यूं लच्छना अरू भेद ताके, लेहु नीके जानि॥
सुनि वृत्ति है द्वैभांति पदकी, शक्ति तामें एक।
तहां लच्छना पुनि जानि दूजी, सुनहु सो सविवेक॥ ३७॥
जा पदतैं जा अर्थ की, ह्वै सुनते हि प्रतीति।
ऐसी इच्छा ईशकी, शक्ति न्याय की रीति॥ ३८॥

सामर्थ्य पदकी शक्ति जानहु, वेद मत अनुसार।
सो वह्निमैं जिम दाह की है, शक्ति त्यूं निराधार॥ ३९॥
ननु वह्निमैं नहिं शक्ति भासै, वह्नि विन कछु और।
है हेतुता जो दाहकी, सो वह्निमैं तिहि ठौर॥
इम पदनहू मैं वर्ण बिन कछु, शक्ति भासत नाहिं।
या हेतु तैं जो ईश इच्छा, शक्ति मो मति मांहि॥ ४०॥
प्रतिबन्ध होते वह्नितैं नहिं, दाह उपजै अंग,
उत्तेजक रू जब धरैं तब, फिरि दहै वह्नि स्वसङ्ग।
ह्वै वह्नि मैं जो हेतुता तो, दाह ह्वै सब काल,
जो नशै उपजै वह्नि होते, हेतु शक्ति सु बाल॥ ४१॥
शिष रीति यह सब वस्तु मैं तूं, शक्ति लेहु पछानी।
बिन शक्ति नहिं कछु काज होवै, यहै निश्चय मानी॥ ४२॥
अब शक्ति यामैं है नहीं, वह शक्ति उपजी और।
यह शक्ति को परसिद्ध अनुभव, लेपि है किस ठौर॥ ४३॥
जो शक्ति इच्छा ईशकी, सो पदनके न नजदीक।
मत न्यायको अन्याय या विधि, शक्ति जानि अलीक॥ ४४॥
योग्यता जो अर्थकी, पदमांहि शक्ति सु देखि।
यूं कहत वैय्याकरण भूषण, कारिका हरि लेखि॥ ४५॥
सुनि शिष्य वैयाकरण मत मैं प्रबल दूषण एक,
सार्मथ्य पद मैं है न वा यह, पूछि ताहि विवेक।
भाखै जु है तौ शक्ति मानहु, ताहि लोक प्रसिद्ध,
कहि नाहि जो असमर्थ पद सो योग्य ह्वै यह सिद्ध॥ ४६॥
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रू, कहत ही सविरोध।
जो और दूषण देखनो, तौ ग्रन्थ दर्पण शोध॥ ४७॥

सम्बन्ध पदको अर्थ सैं तादात्म्य शक्ति सु वेद।
इस भट्टके अनुसारि भाषत ताहि भेदाऽभेद॥ ४८॥
यह ॐ अक्षर ब्रह्म है, यों कहत वेद अभेद।
पुनि बानि मैं पद अर्थ बाहिर, देखियत यह भेद॥ ४९॥
जो गुण गुणी औ जाति व्यक्ति, क्रिया अरु तद्वान्।
सम्बन्ध लखि तादात्म्य इनको, कार्य कारण सान॥ ५०॥
एक वस्तुको एकमैं, भेद अभेद विरुद्ध।
युक्ति युक्त यातैं कहत, यह मत सकल अशुद्ध॥ ५१॥
प्रवण वर्ण अरू ब्रह्मको, कह्यो जु वेद अभेद।
तामैं अन्य रहस्य कछु, लख्यो न भट्ट सुभेद॥ ५२॥
ह्वै पद मैं जा अर्थकी, शक्ति शक्य सो जानि।
वाच्य अर्थ पुनि कहत तिहिं, वाचक पद हि पिछानि॥ ५३॥
शक्यको सम्बन्ध जो स्वरूप जानि लच्छन को,
लच्छना सो भान जाको लच्छ्य सु पिछानिये।
वाच्य अर्थ सारो त्यागि, वाच्य को सम्बन्ध जहां,
होई परतीति तहां जहती बखानिये॥
वाच्यजुत वाच्यके सम्बन्धीका जु ज्ञानि होय,
ताहि ठौर लच्छना अजहतीहि मानिये।
एक वाच्य भागत्याग होत तहाँ भागत्याग,
दूजो नाम जहती अजहती प्रमानिये॥ ५४॥
सर्वशक्ति सर्वज्ञ विभु, ईश स्वतंत्र परोच्छ।
मायी "तत्" पदवाच्य सो, जा मैं बन्ध न मोच्छ॥ ५५॥
कहे धर्म जो ईशके, सब तिनतैं विपरीत।
ह्वै जिहिं चेतन जीव तिहिं, त्वं पद वाच्य प्रतीत॥ ५६॥

महावाक्यमैं एकता, ह्वै दोनों की भान।
सो न बनै यातैं सुमति, लच्छ्य लच्छनहिं जान॥ ५७॥
आदि दोय नहिं सम्भवैं, महावाक्य मैं तात।
भागत्याग यातैं लखहु, ह्वै जातैं कुशलात॥ ५८॥
ज्ञेय जु साक्षी ब्रह्म चित्, वाच्य मांहि सो लीन।
मानहु जहती लक्षणा, ह्वै कछु ज्ञेय नवीन॥ ५९॥
वाच्यहु सारो रहत है, जहां अहजती मीत।
वाच्य अर्थ सविरोध यूं, तजहु अजहती रीत॥ ६०॥
त्यागि विरोधी धर्म सब, चेतन शुद्ध असंग।
लखहु लक्षणा तैं सुमति, भागत्याग यह अङ्ग॥ ६१॥
कवित्त "गंगा मैं ग्राम" जहती लक्षणा या ठौर लखि।
"सोनधावै" लक्षणा अजहति जनाइये।
"सोई यह वस्तु" इहां लक्षणा है भागत्याग,
दूजो नाम जहती, अजहती सुनाइये।
"तत्त्वमसि" आदि महावाक्यन मैं भागत्याग,
लक्षणा न जहती, अजहती बताइये।
"ब्रह्म" काहु पदको न वाच्य यों बखान वेद,
याते सर्वपदन मैं रीति यूं लखाइये॥ ६२॥
माया मांहि सत्यता जु और भांति भाषियत,
ब्रह्म मांहि सत्यता सु और भांति भाषिये।
दोऊ मिलि सत्यपद वाच्य मुनि भाषत हैं,
ब्रह्म मांहि सत्यता सु लक्ष्य भाग राखिये॥
बुद्धि वृत्ति संवित् द्वै मिले ज्ञान पद वाच्य,
संवित्स्वरूप लक्ष्य बुद्धि वृत्ति नाखिये

आत्म औ विषै को सुख वाच्य पद आनन्द को,
विषै सुख त्यागि आत्म सुख लक्ष्य आखिये॥ ६३॥
एकहि पदमें लक्षणा, मानै नहीं विरोध।
दोय पदनमें लक्षणा, निष्फल कहत सुबोध॥ ६४॥
लक्षणा जो कहै एक पद माँहि ताकूँ यह,
पूछि दोय पदन मैं कौनसे मैं लक्षणा।
प्रथम वा द्वितीय मैं कहै ताहि भाषि यह,
वाक्यन को होयगो विरोध मूढ़ लक्षणा॥
तीन वाक्य मध्य जीव वाचक प्रथम पद,
"तत्त्वमसि" यामैं आदि पद ईश लक्षणा।
प्रथम वा द्वितीय को नेम नहिं बनै यातैं
भाषत द्वै पदन मैं लक्षणा सुलक्षणा॥ ६५॥
ईश पदहि लक्षक कहै, सब अनर्थ की खानि।
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्य मैं, ह्वै पुरुषारथ हानि॥ ६६॥
साक्षी त्वं पद लक्ष्य कहु, कैसे ईश स्वरूप?।
यातैं दो पद लक्षणा, भाषत यतिवर भूप॥ ६७॥
तत् त्वं त्वं तत् रीति यह, सब वाक्यन मैं जानि।
जातैं होय परोक्षता, परिच्छिन्नता हानि॥ ६८॥
जीव ब्रह्मकी एकता, कहत वेद स्मृति बैन।
शिष्य तहां पहिचानिये, भाग त्याग की सैन॥ ६९॥
अस शिष गुरु उपदेश सुनि, भो तत्काल निहाल।
भलै विचारै याहि जो, ताके नशत जंजाल॥ ७०॥
मिथ्या गुरु सुरबानि, कियो ग्रन्थ उपदेश यह।
सुनत करत तम हानि, यह ताकी भाषा करी॥ ७१॥

अगृध देवकूं स्वप्नमैं, यह किया गुरु उपदेश।
नश्यो न तहुं दुःख मूल वह, मिथ्या बनको वेस॥ ७२॥
भगवन् यह तुम ग्रन्थ पढ़ायो, अर्थ सहित सो मो हिय आयो।
वन दुःख मूल तऊ मुहिं भासै, कहु उपाय जातैं यह नाशै॥ ७३॥
बोले गुरू सुनि शिष की बानी, सुनि शिष ह्वै जाते वन हानि।
अस उपाय कोऊ और नहीं है, वनका नाशक हेतु यही है॥ ७४॥
महावाक्यके अर्थ विचारहु, "मैं अगृध" यूं टेरि पुकारहु।
सुनि पुनि वाक्य विचारे चेला, "अहं अगृध" यह दीनो हेला॥ ७५॥
निद्रा गई नैन परकाशे, बन गुरू ग्रन्थ सबै वह नाशे।
भयो सुखी बन दुःख बिसरायो, हुतो अगृध निज रूप सु पायो॥ ७६॥
अगृध देव मैं नींद तैं, भौ वन दुःख यह रीति।
आतम मैं अज्ञान तैं, त्यों जग दुःख परतीति॥ ७७॥
ज्यों मिथ्या गुरू ग्रन्थ तैं, मिथ्या वन संहार।
त्यों मिथ्या गुरू वेद तैं, मिथ्या जग परिहार॥ ७८॥
लक्ष्य अर्थ लखि वाक्यको, ह्वै जिज्ञासु निहाल।
निरावरण सो आप है, दादू दीन दयाल॥ ७९॥

सप्तम तरङ्ग

उत्तम मध्यम कनिष्ठ तिहुं, सुनि अस गुरु उपदेश।
ब्रह्म आत्म उत्तम लख्यो, रह्यो न संशय लेश॥ १॥
भ्रमन करत ज्यूं पवनतैं, सूको पीपर पात।
शेष कर्म प्रारब्ध तैं, क्रिया करत दरसात॥ २॥

कबहुक चढि रथ बाजि गज, बाग बगीचे देखि।
नग्न पाद पुनि एकले, फिर आवत तिहिं लेखि॥ ३॥
विविध वेष सज्जा सयन, उत्तम भोजन भोग।
कबहुक अनसन गिरिगुहा, रजनि शिला संयोग॥ ४॥
करि प्रनाम पूजन करत, कहुँ जन लाख हजार।
उभै लोकतैं भ्रष्ट लखि, कहत कर्मी धिक्कार॥ ५॥
जो ताकी पूजा करत, संचित सुकृत सु लेत।
दोष दृष्टि तिहि जो लखे, ताहि पाप फल देत॥ ६॥
ऐसे ताके देहको, विना नियम व्यवहार।
कबहु न भ्रम सन्देह है, लह्यो तत्त्व निर्धार॥ ७॥
नहिं ताकूं कर्त्तव्य कछु, भयो भेद भ्रम नाश।
उपज्यो वेद प्रणाम तै, अद्वय ब्रह्म प्रकाश॥ ८॥
ज्ञानीके व्यवहार मैं कोऊ कहत है नेम।
त्रिपुटी तजै दुख हेतु लखि, लहै समाधि सप्रेम॥ ९॥
ह्वै किञ्चित् व्यवहार जो, भिक्षा शन जल पान।
भूलै नाहिं समाधि सुख, ह्वै त्रिपुटी तैं ग्लान॥ १०॥
लहै प्रयत्न समाधिको, मुनि ज्ञानी इह हेत।
जो समाधि सुख तज भ्रमत, नर कूकर खर प्रेत॥ ११॥
गौड पाद मुनि कारिका, लिख्यो समाधि प्रकार।
ज्ञानी तजि विक्षेप यों, लहै सकल सुख सार॥ १२॥
अष्ट अंग बिन होत नहिं, सो समाधि सुख मूल।
अष्ट अंग ते अब सुनो, जे समाधि अनुकूल॥ १३॥
पांच पांच यम नियम लखि, आसन बहुत प्रकार।
प्राणायाम अनेक विध, प्रत्याहार विचार॥ १४॥

छठी धारणा ध्यान पुनि, अरु सविकल्प समाधि।
अष्ट अंग ये साधिके, निर्विकल्प आराधि॥ १५॥
सुनि समाधि कत्तर्व्यता, तत्त्वदृष्टि हंसि देत।
उत्तर कछु भाषत नहीं, लख तिहिं बकत सप्रेत॥ १६॥
भ्रमण करत कछु काल यों, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान।
भोगै निज प्रारब्ध तब, लीन भये तिहिं प्रान॥ १७॥
दूजो शिष्य अदृष्टि तिहिं, गंगा तट शुभ थान।
देह इकंत पवित्र अति, कियो ब्रह्म को ध्यान॥ १८॥
शास्त्र रीति तजि देह कूं, पूरब कह्यो जु राह।
जाय मिल्यो सो ब्रह्म तैं, पायो अधिक उछाह॥ १९॥
तर्क दृष्टि पुनि तीसरो, लहि गुरुमुख उपदेश।
अष्टादश प्रस्थान जिन, अवगाहन करि वेश॥ २०॥
जेती वाणी वैखरी, ताको अलं पिछान।
हेतु मुक्तिको ज्ञान लखि, अद्वय निश्चय ज्ञान॥ २१॥
सुनि प्रसिद्ध विद्वान् पुनि, मिलयो आप तिहिं जाय।
निश्चय अपनो ताहि तिहिं, दीनो सकल सुनाय॥ २२॥
तर्क दृष्टिके बैन सुनि, सो बोल्यो बुध सन्त।
जो मोसू तैं यह कह्यो, सोई मुख्य सिद्धान्त॥ २३॥
संशय सकल नशाय यों, लख्यो ब्रह्म अपरोध।
जग जान्यो निज सब असत, तैसे बन्ध रू मोक्ष॥ २४॥
शेष रह्यो प्रारब्ध यों, इच्छा उपजी येह।
चलि तत्काल हि देखिये, जननी जनक युत गेह॥ २५॥
पुत्रगये लखि गेह तैं, पितु चित्त उपज्यो खेद।
सुनो राज न तिनि तज्यो, नहिं यथार्थ निर्वेद॥ २६॥

शुभ सन्तति पितु सो बड भागा, भयो प्रथम तिहिं मन्द विरागा।
जिज्ञासा उपजी यह ताकूं, देव ध्येय को ध्याऊं जाकूं॥ २७॥
पंडित निरनय करन बुलाए, यथा योग्य आसन बैठाये।
प्रश्न कियो यह सबके आगे, असको देव न सौवै जागे॥ २८॥
पुरुषारथ हित जन जिहि जांचौं, भक्ति मानिके मनमैं राचै।
सुनि यह पृथिवी पतिकी वानी, इक तिनमैं बोल्यो सुज्ञानी॥ २९॥
सुनि राजा तुहि कहूं सुदेवा, शिव विरंचि लागे जिहि सेवा।
शङ्ख चक्र धारी हितकारी, पद्म गदा धर पर उपकारी॥ ३०॥
मंगल मूरति विष्णु कृपालू, निज सेवक लखि करत निहालू।
शक्ति गणेश सूर शिव जे हैं, सब आज्ञा ताकी में ते हैं॥ ३१॥
भारत सकल ग्रन्थ यह भाखै, पद्मपुराण तापिनी आखै।
विष्णुरूपतैं उपजत सबही, परै भीर जांचौं तिहिं तबही॥ ३२॥
विविध वेषको धरि अवतारा, सब देवन कूं देत सहारा।
यातैं ताकी कीजै पूजा, विष्णु समान सेव्य नहीं दूजा॥ ३३॥
विष्णु भक्त शिव उत्तम कहिये, तथापि सेव्य स्वरूप न लखिये।
रूप अमङ्गल शिवको शव सम, ध्यान करैं नहिं ताकौ यूं हम॥ ३४॥
राख डमरू गज चर्म कपाला, धरैं आप किहिं करै निहाला।
ताको पूत गनेस हु तैसो, रूप विलच्छन नर पशु जैसो॥ ३५॥
शठ हठतैं ध्यावत जो देवी, तामस रूप धरत तिहिं सेवी।
तिय निन्दित अशुची न पवित्रा, अवगुण गिने न जात विचित्रा॥ ३६॥
कपट कूटको आकर कहिये, पराधीन नित तन्त्र न लहिये।
ऐसो रूप जु चहिये ताकूं, सो सेवहि नर खर सम ताकूं॥ ३७॥
भ्रमत फिरै यह निसदिन भानू, रहत न निश्चल छिन इक थानू।
भ्रमतो फिरै उपासक ताको, तेहि समान सेवक जो जाको॥ ३८॥

आन देव यातैं सब त्यागै, सेवनीय इक हरि नित जागै।
पूजन ध्यान करन विधि जो है, नारद पञ्चरात्र में सो है॥ ३९॥
शिव सेवक मुनि सुनि तिहि बैना, क्रोध सहित बोल्यो चल नैना।
सुनु राजन बानी इक मोरी, जामैं वचन प्रमान करोरी॥ ४०॥
शिव समान आनको कहिये, मांगै देत जाहि जो चहिये।
सब विभूति हरि कूं दै मांगी, धरत विभूति आप नित त्यागी॥ ४१॥
चर्म कपाल हेतु इहि धारै, सम नहिं उत्तम अधम विचारै।
नग्न रहत उपदेसत ये ही, नहिं विराग सम सुख है केही॥ ४२॥
सदावर्त ऐसो दे भारी, काशीपुरी मरे नर नारी।
सो सायुज्य-मुक्ति कूं जावै, गर्भ वास सङ्कट नहिं पावै॥ ४३॥
शिव समान नर नारी ते सब, लहत सुदिव्य भोग सगरे तब।
करत आप अद्वय उपदेसा, तजत लिङ्ग यूं ब्रह्म प्रवेसा॥ ४४॥
ऊंच नीच रंचहु नहिं देखै, मुक्ति सबन कूं दै इक लेखै।
शिव समान राजन को दाता? भक्त अभक्त सबन को त्राता॥ ४५॥
विष्णु-सुभाव सुन्यो हम ऐसो, जग में जन प्राकृत है तैसो।
त्राता भक्त अभक्त न त्राता, यह प्रसिद्ध सब जग मैं नाता॥ ४६॥
हरि सेवक हर सेव्य बखान्यो, रामचन्द्र रामेश्वर मान्यो।
स्कन्द पुराण व्यास बहु भाख्यो, हरि सेवक हर सेव्य हि राख्यो॥ ४७॥
कह्यो जु भारत पद्म पुराना, सब देवन तैं हरि अधिकाना।
भारत तात्पर्य नहिं देख्यो, जो अप्पय दीक्षित बुध लेख्यो॥ ४८॥
शिव सबको प्रतिपाद्य बखान्यो, भक्तनमैं उत्तम हरि गान्यो।
ईश देव पद सबमैं कहिये, महत सहित इक शिव मैं लहियै॥ ४९॥
शिवतैं भिन्न अशिव जो कहिये, तिहिं तजि शिव कल्याण हि लहिये।
जलशायी जिहिंनाम बखान्यो, सो जागै यह मिथ्या गान्यो॥ ५०॥

विष लख जब सबकूं उपज्यो डर, निर्भय किये सकल गर धरि गर।
जाको पूत गणेश कहावै, विघ्न-जाल तत्काल नशावै॥ ५१॥
कारज मैं कारण गुण होवै, यों शिव विघ्न मूलतैं खोवै।
जन्म-मरण दुःख विघ्न कहावै, तिहिं समूल शिव-ध्यान नशावै॥ ५२॥
सेवन योग्य सदाशिव एका, जागै सहित समाधि विवेका।
तन्त्र पाशुपत रीति जु गावै, त्यूं पूजन करि ध्यान लगावै॥ ५३॥
नारद-पंचरात्र मत झूठो, यह परिमल परसंग अनूठो।
याते शिव सेवा चित लावै, पुरुषार्थ जो चहै सु पावै॥ ५४॥
शिवको पूत गणेश बतायो, कारण गुण कारज मैं गायो।
सुनि गणेशको पूजक बोल्यो, अस किय कोप सिंहासन डोल्यो॥ ५५॥
राजन! सुन दोनूं ये झूठे, वचन सत्य सम कहत अनूठे।
शिवको पूत गणेश बतावै, पराधीनता तामैं गावै॥ ५६॥
कहूं प्रसंग सुनहु इक ऐसो, लिख्यो व्यास भगवत मुनि जैसो।
चढे त्रिपुर मारनकूं सारे, हरि हर सहित देव अधिकारे॥ ५७॥
नहिं गणेश को पूजन कीनो, त्रिपुर न रञ्जहु तिनतैं छीनो।
पुनि पछिताय मनाय गणेशा, त्रिपुर विनाश्यो रह्यो न लेशा॥ ५८॥
भये समर्थ किये जिहि पूजा, सेवन योग सु इक नहिं दूजा।
राम पूत दशरथ को जैसे, विघ्न हरण शिवको सुत तैसे॥ ५९॥
व्यास गणेश-पुराण बनायो, सबको हेतु गणेश बतायो।
हरि हर विधि रवि शक्ति समेता, तुण्डी तैं उपजत सब तेता॥ ६०॥
करत ध्यान जिहिं छन जन मन मैं, नाशत विघ्न प्रधान गगन मैं।
विघ्नन हरनयूं जागत निशदिन, भक्ति सहित सेवहु तिहिं अनुछिन॥ ६१॥
हेतु गणेश शक्तिको सुनिके, भक्त भागवत उचर्यो गुनिके।
सुन राजन वाणी मम सांची, तीनों सकल कहत ये कांची॥ ६२॥

सुने देव शक्ति बिन सारे, मृतक देह सम लखि हत्यारे।
शक्तिहीन असमर्थ कहावै, सौ कैसे कारज उपजावै॥ ६३॥
जिन बहुशक्ति उपासन धारी, ताते भय सकल अधिकारी।
हरि हर सूर गणेश प्रधाना, तिन मैं शक्ति देखियत नाना॥ ६४॥
शक्ति लोकमें भाषत जाकूं, रूप भगवतीको लखि ताकूं।
लाख करोरि मात्रिका गण पुनि, तंत्र ग्रन्थ लखि अंश सकल गुनि॥ ६५॥
काली ताको अंश प्रधाना, माहेश्वरी आदि लखि नाना।
हरि हर ब्रह्म सकल तिहिं ध्यावै, निज निज अंश कृपा तिहिं पावैं॥ ६६॥
ध्येय रूप ध्याता है जबहीं, सिद्ध उपासन लखिये तबहीं।
अस उपासना हरि अरु हरकी, नारी मूर्ति धरी तजि नरकी॥ ६७॥
अमृत मन्थन प्रसंग मैं, हरि मोहिनि स्वरूप।
अर्ध अङ्ग शिवको लसै, देवी रूप अनूप॥ ६८॥
भक्त भगवतिके हर हरि हैं, इन सम कौन उपासन करि हैं।
तदपि महामाया जो ध्यावै, तुरत सकल पुरुषारथ पावै॥ ६९॥
न हिं साधन जगमैं अस औरा, उपजै भोग मोक्ष इक ठौरा।
भक्त भगवतीको जो जगमैं, भोगै भोग न आवत भगमैं॥ ७०॥
शिव कृत तन्त्र रीति यह गाई, भक्ति भगवती अति सुखदाई।
पञ्च मकार न तजिये कहबूं, जिनहिं सनातन सेवत सबहूं॥ ७१॥
कृष्ण देव बलदेव सुज्ञानी, प्रथमा पिबत सदा ज्यूं पानी।
और प्रधान पुरातन जेते, सेवत सकल मकारहि तेते॥ ७२॥
तिन सेवनकी जो विधि सारी, शिव निज मुख भाषी उपकारी।
शिवको वचन धरै जो मनमैं, लहै सु भोग-मोक्ष इक तन मैं॥ ७३॥
ग्रन्थ भागवत व्यास बनायो, उप पुराण काली समझायो।
भक्ति भगवती की इक गाई, पूजाविधि सगरी समुझाई॥ ७४॥

ध्याता सकल भगवती केहैं, हरिहर सूर गणेश जिते हैं।
सकल पिये प्रथमा मतिवारे, पूजत शक्ति मग्न मन सारे॥ ७५॥
जग-जननी जागै इक देवी, परमानन्द लगै तिहिं सेवी।
सूर्यभक्त भगवतीको यश सुनि, क्रोध सहित बोल्यो इक मुनि पुनि॥ ७६॥
सुन राजन वाणी इक मोरी, भाषूं झूठ न शपथ करोरी।
अति पापिष्ठ नीच मत याको, श्रवण सनेह सुन्यो तैं जाको॥ ७७॥
अवगुण जिते बखानत जग मैं, ते गिनियत गुण गण या मग मैं।
मद्य मलिन हि तीरथ राखत, शुद्ध नाम आमिष को आखत॥ ७८॥
कहत और यों सब विपरीता, शम्भु-तन्त्र सेवी मति रीता।
दक्षिण सम्प्रदाय जो दूजी, यद्यपि श्रेष्ठ अनेकन पूजी॥ ७९॥
तथापि बिन भानू सब अन्धे, इन सबके मन जिन मैं बन्धे।
करत भानु सगरो उजियारो, ता बिन होत तुरत अंधियारो॥ ८०॥
और प्रकाशक जगमैं जे हैं, अंश सबै सूरज के ते हैं।
भानु समान कौन हितकारी, भ्रमत आप परहित मतिधारी॥ ८१॥
काल अधीन होत सब कारज, ताहि त्रिविध भाषत आचारज।
वर्तमान भावी अरु भूता, सूरज क्रिया करत यह सूता॥ ८२॥
या विधि सकल भानुतैं उपजै, भस्म होत सब जब वह कुपिजै।
भानु-रूप द्वै-भान्ति पिछानहु, निराकार साकारहिं जानहु॥ ८३॥
निराकार परकाश जु कहिये, नाम-रूप मैं व्यापक लहिये।
अधिष्ठान सबको सो एका, जगत् विवर्त जिहि ह्वै अविवेका॥ ८४॥
अहं भानु अस वृत्ति उदै जब।
तामैं प्रगटि विनाशत तम तब॥ ८५॥
सुनि सकार रूप यह ताको, होय चांदना दिन मैं जाको।
ताके अंश और बहुतेरे, चन्द-तारका दीप घनेरे॥ ८६॥

यातैं द्वैविध भानु बतायो, ज्ञेय ध्येयको भेद जतायो।
वेद सकल याहीकूं भाषत, रूप प्रकाश सत्य तिहि आखत॥ ८७॥
जामैं लेश न तमको कब ही।
लखि तिहिं जग जन जागत सब ही॥ ८८॥
कबहुं न सोवै सो यूं जागै, ध्यान करत ताको तम भागै।
और हि जागत भाखत सगरे, राजन जानि झूठ ते झगरे॥ ८९॥
ऐसे पांच उपासक बोले, निज गुण अवगुण परके खोले।
पण्डित और अनेक जु आये, भिन्न-भिन्न निज मत समझाये॥ ९०॥
वचन विरुद्ध सुने जब राजा, यह संशय उपज्यो तिहिं ताजा।
इनमैं कौन सत्य बुध भाषत, युक्ति-प्रमाण सकल सम आखत॥ ९१॥
संशै शोक दुःखित यूं जिय मैं, को उपाय यह लख्यो न हिय मैं।
चिन्ता हृदय हुई यह जाकूं, निज सन्देह सुनाऊं काकूं?॥ ९२॥
शास्त्र-निपुण पण्डित जग जेते, सुने विरुद्ध बकत यह तेते।
यों चिन्तन बहुकाल भयो जब, तर्कदृष्टि तिहिं आय मिल्यो तब॥ ९३॥
मिले परस्पर ते उभै, पुत्र-पिता जिहिं रीति।
करि प्रणाम आशिष दुहूं, आसन लहे सप्रीति॥ ९४॥
निज पितु चिन्ता सहित लखि, सुत बोल्यों यह बात।
का चिन्ता चित्त रावरे, मुख प्रसन्न नहिं तात॥ ९५॥
शुभ सन्तति सुतकी सुनि बानी, तिहिं भाषी निज सकल कहानी।
चित-चिन्ताको हेतु सुनायो, को उपास्य यह तत्त्व न पायो॥ ९६॥
तर्क दृष्टि सुनि पितुके बैना, बोलयो शुभ सन्तति सुख दैना।
कारण रूप उपास्य पिछानहु, ताके नाम अनन्त हि जानहु॥ ९७॥
कारज रूप तुच्छ लखि तजिये, यह सिद्धान्त वेदको भजिये।
रचै व्यास इतिहास पुराना, तिन मैं यही मतो नहिं नाना॥ ९८॥

मन मैं मर्म न लखत जु पण्डित, करत परस्पर मत ते खण्डित।
नीलकण्ठ पण्डित बुध नीको, कियो ग्रन्थ भारत को टीको॥ ९९॥
तिन यह प्रथम हि लिख्यो प्रसङ्गा।
श्रुति-सिद्धान्त कह्यो जो चंगा॥ १००॥
शुभ सन्तति सुनि सुतके बैना, उपज्यो जिय मैं किञ्चित् चैना।
पुनि निज प्रश्न कियो निज पूतहि, शास्त्र परस्पर कहत असूतहि॥ १०१॥
तिनमैं सत्य कौन सो कहिये।
जाको अर्थ बुद्धि मैं लहिये॥ १०२॥
तर्क दृष्टि सुनि निज पितु बानी, बोल्यो वचन सु परम प्रमानी।
उत्तर मीमांसा उपदेशा, वेद विरुद्ध न जामैं लेशा॥ १०३॥
शास्त्र पञ्च ते वेद विरुद्धं, याते जानहु तिनहि अशुद्धं।
किञ्चित् अंश वेद अनुसारी, लखि बहु ग्रहत मन्द अधिकारी॥ १०४॥
तर्क दृष्टिके वचन सुनि, शुभ सन्तति तिहिं तात।
संशय शोक नश्यो सकल, लह्यो हिये कुशलात॥ १०५॥
कारण ब्रह्म उपासना, करी बहुत चित लाय।
तर्कदृष्टि निज लखि गुरू, राज-समाज चढाय॥ १०६॥
कछू व्यतीत्यो काल तब, तजि राजा निज प्राण।
ब्रह्मलोकमें सो गयो, मुनि जहं जात सध्यान॥ १०७॥
राज-काज सब तब कियो, तर्क दृष्टि हुसियार।
लग्यो न रंचक रंग तिहि, लह्यो ब्रह्म निर्धार॥ १०८॥
अन्तभयो प्रारब्ध को, पायो निश्चल गेह।
आतम परमातम मिल्यो, देह खेह मैं छेह॥ १०९॥
यह विचार सागर कियो, जामैं रत्न अनेक।
गोप्य वेद सिद्धान्त तैं, प्रगट लहत सविवेक॥ ११०॥

साङ्ख्य न्याय मैं श्रम कियो, पढ़ि व्याकरण अशेष।
पढ़े ग्रन्थ अद्वैत के, रह्यो न एकहु शेष॥ १११॥
कठिन जु और निबन्ध हैं, जिनमैं मतके भेद।
श्रमते अवगाहन किये, निश्चल दास सवेद॥ ११२॥
तिन यह भाषा ग्रन्थ किय, रञ्च न उपजी लाज।
तामैं यह इक हेतु है, दया धर्म सिरताज॥ ११३॥
बिन व्याकरण न पढ़ि सकै, ग्रन्थ संस्कृत मन्द।
पढ़ै याहि अनयास हि, लहै सु परमानन्द॥ ११४॥
दिल्ली तैं पश्चिम दिशा, कोस अठारह गाम।
तामैं यह पूरो भयो, किहडौली तिहि नाम॥ ११५॥
ज्ञानी मुक्ति विदेह मैं, जासौं होय अभेद।
दादू आदू रूप सो, जाहि बखानत वेद॥ ११६॥
नाम रूप व्यभिचार मैं, अनुगत एक अनूप।
दादू पदको लक्ष्य है, अस्ति-भाति-प्रिय रूप॥ ११७॥